1.10.64

वैदिक धर्म

वर्ष ४५ : अंक १० : अक्टूबर १९६४

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

सहसंपादक
श्री श्रुतिशील शर्मा, एम्. ए., शास्त्री, तर्कशिरोमणि

विषयानुक्रमणिका

' वैदिक धर्म ' वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६१; विदेशके लिये रु. ६.५० डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो.- ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. बलसाड]

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

'वेद' मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हरएक आर्य धर्मीको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	डा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२)	.५०
३ सामवेद संहिता	३)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बडे अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	२)
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१ २५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अनेक ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये देवता-मंत्र-संग्रह मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता- (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम-मरुद्देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	११)	२)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इंद्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुद्देवता मंत्रसंग्रह	२)	.५)

२ दैवत संहिता- (द्वितीय भाग)

अश्विनौ-आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव। इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	१२)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)
३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदितिः आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवाः मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता- (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	४)	.५०
६ मरुद्देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ)	५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें आये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)

(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१ मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन	१)	.२५
२ मेधातिथि „ „	२)	.२५
३ शुनःशेप „ „	१)	.२५
४ हिरण्यस्तूप „ „	१)	.२५
५ काण्व „ „	२)	.२५
६ सव्य „ „	१)	.२५
७ नोधा „ „	१)	.२५
८ पराशर „ „	१)	२५
९ गोतम „ „	२)	.३७
१० कुत्स „ „	२)	.३७
११ त्रित „ „	१.५०	.३१
१२ संवनन „ „	.५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ „ „	.५०	.१२
१४ नारायण „ „	१)	.२५
१५ बृहस्पति „ „	१)	.२५
१६ वागाम्भृणी „ „	१)	.२५
१७ विश्वकर्मा „ „	१)	.२५
१८ सप्त ऋषि „ „	.५०	.१२
१९ वसिष्ठ „ „	७)	१)
२० भरद्वाज „ „	७)	१.५०

मन्त्री— 'स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट— 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)' [जि. बलसाड]

वैदिकधर्म

जगत्का सम्राट्

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीना-
मधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि
चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥

(अथर्व. १९।५।१)

(जगतः चर्षणीनां) संसारमें जितने प्राणी हैं, उन सबका (राजा इन्द्रः) राजा ऐश्वर्यवान् परमात्मा है, तथा (क्षमि अधि) इस पृथ्वी पर (विषुरूपं यत् अस्ति) विविध रूपोंवाला जो कुछ है, उसका भी राजा इन्द्र ही है। वह (दाशुषे वसूनि ददाति) दाताको धन देता है तथा (उपस्तुतः) अच्छी तरह प्रशंसित हुआ हुआ वह (राधः अर्वाक् चोदत्) ऐश्वर्योंको स्तोताओंकी ओर प्रेरित करता है।

सब चराचर जगत्का वह परमात्मा ही राजा है। वह हर प्रकारसे अपने भक्तोंकी सहायता करता है और अपने भक्तोंको हर तरहकी सम्पत्ति देता है।

* * *

विशेष सजधजके साथ प्रकाशित होनेवाला

“ अमृतलता ” का आगामी अंक

‘ श्री नेहरु–विशेषाङ्क ’

▲

‘ पत्रिका उपादेया भविष्यति इत्याशा वर्तते । स्थायिस्तम्भ प्रकाशनाय यो निश्चय कृतः स स्वागतार्हः । अलब्धगुरुसाहाय्यानां येषां प्रौढानां संस्कृतपिपाठयिषा वर्तते तेषां कृते परिशिष्टं विशेषरूपेण उपयोगि भविष्यति ।

— डॉ. सम्पूर्णानन्द

लगभग सौ पृष्ठोंमें बहुत ही सुपाठ्य और सुरुचिपूर्ण सामग्री आपने प्रस्तुतकी है । संस्कृत साहित्यके अनेक रत्नोको पुन· लोक सुलभ बनानेके लिए इस प्रकारकी पत्र–पत्रिकाओंकी अत्यंत आवश्यकता है ।

— डॉ. वा श. अग्रवाल

इसी पत्रिकाका आगामी अंक १४ नवम्बरको स्वर्गीय श्री नेहरुके जन्म दिनके शुभावसर पर ‘ श्री नेहरु–विशेषांक ’ के रूपमें प्रकाशित होगा । इसमें अनेक विख्यात लेखकोंकी सुरुचिपूर्ण सामग्री होगी । उनमें कुछके नाम इस प्रकार हैं ।

१ स्व· श्री पं. जवाहरलाल नेहरु
२ डॉ. स· राधाकृष्णन्
३ डॉ गोविन्ददास
४ डॉ. उमेशमिश्र
५ डॉ वासुदेवशरण अग्रवाल
६ डॉ. लक्ष्मीनारायण ‘ सुधांशु ’
७ डॉ. भुवनेश्वरनाथ मिश्र ‘ माधव ’
८ डॉ· रामचरण महेन्द्र
९ डॉ. मुंशीराम शर्मा
१० श्री गुरुजी गोलवलकर
११ डॉ. व्रतीन्द्रकुमार सेन गुप्त

तथा अन्य अनेकों विद्वान् लेखक । यह अक हर तरहसे पठनीय एवं संग्रहणीय होगा । इस विशेषांकको प्राप्त करनेके लिए आज ही रु. ७.०० भेजकर पत्रिकाके ग्राहक बनिए ।

मन्त्री— स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट– ‘ स्वाध्यायमण्डल (पारडी) ’ , पारडी [जि. वलसाड]

म. म. वेदमूर्ति श्री पं. सातवलेकरजी के

९८ वें जन्म दिनके समारोहका

संक्षिप्त विवरण

"द्रष्टा"

म. म. श्री पं. सातवलेकरजीके ९८ वें वर्षमें प्रवेश करनेके शुभावसरपर ता. १९ सितम्बरको मंडलमें एक संक्षिप्त समारोह किया गया। वह समारोह संक्षिप्त होते हुए भी सर्वात्मना सफल हुआ। किसी पूर्व तैय्यारीके बिना यह समारोह किया गया था।

उस दिन सायंकाल ३॥ बजे मण्डलके सदस्योंकी एक सभा हुई, जिसमें दहाणु हाईस्कूलके प्रधानाचार्य श्री रा. ना. किनूर तथा बम्बईसे अतिथि भी अप्रत्याशित रूपसे आगए थे।

सभाका प्रारंभ प्रार्थनासे हुआ। प्रार्थनाके बाद सत्कार-समारंभकी शुरुआत करते हुए श्री श्रुतिशील शर्माने अपने भाषणमें कहा कि—

'श्री पण्डितजीके विविध रूपोंमें चार रूप विशेषतः उभरते हैं (१) वेदोद्धारक, (२) समाजसुधारक, (३) दार्शनिक और (४) योगी। इनमें उनका वेदोद्धारकका रूप जगद्विख्यात है। १९१८ सन्में औंधरियासतमें इस मण्डलकी स्थापनाके पीछे वेदोद्धारके उनके विचार ही कार्य कर रहे थे। सब भारतीयोंको वर्णसंकर बनानेकी दुष्ट इच्छावाले अंग्रेजोंके शासनकालमें वेदोंका सर्वथा ह्रास हो चुका था। उस वक्त महर्षि दयानन्दने वेदोंका डिण्डिमनाद किया। उनके बाद वेदोद्धारकोंकी चलती चली आई परम्परामें श्री पंडितजी ने भी अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। और बहुत समय बाद सर्व शुद्ध वेदोंका संस्करण उन्होंने निकाला।

समाजसुधारकके रूपमें उनका दर्शन उनके ग्रंथ 'छूत और अछूत' में किया जा सकता है। तात्कालीन समाज विशेषतः ब्राह्मण समाजमें प्रचलित कुरीतियों पर इस पुस्तकमें बड़े निर्मम प्रहार किए गए हैं (यहां स्मरण रहे कि श्री पंडितजी स्वयं भी एक कट्टर ब्राह्मण हैं) उससे ब्राह्मणसमाजमें एक बड़ा भारी तहलका मच गया। श्री पंडितजीके इस रूपमें गांधीजीकी हूबोहूब प्रतिच्छाया देखी जा सकती है।

इनके दार्शनिकताकी झांकी इनकी 'गीता-पुरुषार्थबोधिनी' में भी देखी जा सकती है। और इनका सारा जीवन ही एक योगीका जीवन है।,

श्री श्रुतिशील शर्माके भाषणके बाद श्री भास्करानन्दजी शास्त्रीने अपने भाषणमें बताया कि 'श्री पण्डितजीकी शोहरत सुनकर वे (शास्त्रीजी) बनारससे पैदल चल पड़े और 'जहां चाह वहां राह' की उक्तिको चरितार्थ करते हुए बारडोलीमें श्री पण्डितजीके दर्शन किए। श्री पण्डितजी उन दिनों कॉंग्रेस महाधिवेशनके निमित्त बारडोली गए हुए थे। वहां श्री पण्डितजीके भाषणोंसे वे इतने प्रभावित हुए कि श्री पण्डितजीके आश्रम स्वाध्यायमण्डलमें आकर रहनेकी इच्छा बलवती हो उठी। भगवान्की कृपासे आश्रममें आकर रहनेका एवं श्री पण्डितजीके गुणोंका अनुकरण कर अपना जीवन बनानेका सुयोग भी मिल गया है।'

उसके अनन्तर मण्डलके कार्यकारी परीक्षामंत्री श्री डाह्याभाईने भी अपने संक्षिप्तभाषणमें श्री पण्डितजीको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की।

तदनन्तर दहाणु हाईस्कूलके प्रधानाचार्य श्री रा. ना. किनूर ने श्री पण्डितजीके विषयमें अपने भाषणमें कहा कि 'औंधके निवासकालमें श्री पण्डितजीको अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। पर श्री पण्डितजी अपने मार्गसे कभी भी विच-

क्षित नहीं हुए। यह उनका दृढ संकल्प ही था कि प्रारंभमें धनहीन अवस्थामें इस मण्डलकी नींव रखी और इसे आज इतना विस्तृत कर दिया। हम सबकी यही शुभ कामना है कि श्री पण्डितजी चिरकाल तक जीवित रहकर हमारा मार्ग प्रदर्शन करते रहें।'

इस भाषणके अनन्तर श्री पण्डितजीके एक पारिवारिक अन्तरंग सदस्य उन्हींके पुत्रवधू सौ. लतिका सातवलेकरने श्री पण्डितजीकी अतिथिप्रियताका बखान करते हुए कहा 'कि श्री पण्डितजी भले ही स्वयं अस्वस्थ हों पर यदि कोई अतिथि आ जाए तो उसी समय उनकी अस्वस्थता भाग जाती है और अतिथिकी सेवामें जुट जाते हैं। यदि कोई प्रसिद्ध विद्वान् या लेखक आ जाए तो लोगोंके द्वारा मना करने पर भी अपनी कुर्सीसे उठकर दरवाजे तक जाते हैं उसका स्वागत करने। इस विषयमें वे किसीकी भी सुनना पसन्द नहीं करते।'

इस भाषणके बाद श्री पण्डितजीके परिवारकी ही एक अन्य सदस्य सौ. इन्दिराबाई घाटेने अपने प्रेरक शब्दोंमें श्री पण्डितजीके जीवनके अनेक अंगों पर अच्छा प्रकाश डाला।

अन्तमें मण्डलके व्यवस्थापक व मंत्री श्री वसन्तराव सातवलेकरने इस शुभावसरपर सभी सदस्योंसे हार्दिक अपील की कि वे श्री पण्डितजीके द्वारा लगाए गए इस मण्डल रूपी वृक्षको बढानेमें पूरी सहायता करें ताकि यह वृक्ष विशाल होकर अपनी छत्रछायामें सबको लाकर सुख एवं शान्तिप्रदान करनेमें समर्थ हो।

इन भाषणोंके बाद मण्डलके विभिन्न विभागोंकी तरफसे श्री पण्डितजीको अपनी अपनी शुभ कामनाओंके साथ पुष्पहार अर्पित किए गए।

तदनन्तर सत्कारका उत्तर देते हुए श्री महामहोपाध्याय-जीने बडे ही भावपूर्ण शब्दोंमें कहा कि—

मैं ९७ वर्षका हो गया हूं इसलिए आप मेरा सत्कार कर रहे हैं, यह देखकर आश्चर्य होता है। प्राचीन भारतमें इतनी अवस्था लोगोंके लिए साधारण बात थी। उस समय १४०–१५० वर्षके लोग उत्साहसे कार्य करते थे और वह भी इधर उधर भ्रमणका काम। हमारे शास्त्रोंमें आया है कि दीर्घायुका रहस्य दीर्घसंध्या है। महाभारतमें कहा है 'ऋषयो-दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः' अर्थात् दीर्घसंध्या करके ऋषियोंने दीर्घायु प्राप्त की। इसके साथ ही प्राणायाम भी दीर्घायु प्राप्तिमें बहुत सहायक होता है। इन साधनोंके द्वारा आज भी दीर्घायु प्राप्त की जा सकती है। मेरी परमेश्वरसे यही प्रार्थना है कि वह सब मनुष्योंको ऐसी शक्ति प्रदान करे कि वे फिर दीर्घायु प्राप्त करके उत्तम कर्मों द्वारा संसारको सुख-मय बनायें।'

इसके बाद पूजा हुई और तदनन्तर रातको सहभोजनका भी कार्यक्रम रखा गया। इन सभी कार्यक्रमोंमें मण्डलके सभी सदस्योंने बडे उत्साहसे भाग लिया और इस प्रकार यह समा-रम्भ उत्साह और प्रसन्नताके साथ मनाया गया।

卐 卐 卐

आवश्यक सूचना

अपने सभी सहयोगी केन्द्रव्यवस्थापकोंको सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष होता है कि राज्य-स्थान-सरकारने अपने हायर सेकेण्डरी स्कूलोंमें संस्कृत पढानेके लिए हमारी परीक्षाओंको मान्यता प्रदान कर दी है। तदनुसार हमारे यहांसे साहित्यरत्न एवं साहित्याचार्य परीक्षामें उत्तीर्ण पदवी-धारी स्नातक राजस्थानके हायर सेकेण्डरी स्कूलोंमें क्रमशः संस्कृतके टीचर एवं सीनियर टीचरके पदों पर नियुक्त हो सकेंगे।

इसके साथ ही यह भी सूचित किया जाता है कि अगले वर्ष अर्थात् १९६५ से साहित्यिक परीक्षाएं नवीन पाठ्यक्रमके अनुसार ली जाएंगी। अतः पुराना पाठ्यक्रम इस सत्रके बाद रद्द समझना चाहिए। जिन केन्द्र व्यवस्थापकोंके पास नवीन पाठ्यक्रम न पहुंचे हों तो कृपया वे पत्र डाल कर नवीन पाठ्यक्रम मंगवा लें। तथा सभी परीक्षार्थियोंको भी इसकी सूचना देनेकी कृपा करें।

परीक्षामन्त्री
स्वाध्याय-मण्डल, पारडी

सत्यं शिवं सुन्दरम्

(लेखक— श्री लालचन्द)

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत।
धर्मकृते विपश्चिते मनस्यवे ॥ (ऋ. ८।९८।१; साम. ४।४।९)

सबसे महान् ज्ञानस्वरूप ज्ञानमय ज्ञानदाता परममेधावी स्तुतिके योग्य परमेश्वरके लिए उत्तम स्तोत्रोंका गान करो।

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ (ऋ.८।६९।८)

हे प्रियजनो! प्रेममय भावनावाले, प्यारे पुत्रो हे वीरो! आप लोग उस परमेश्वरकी स्तुति करो, खूब स्तुति करो और स्तुति करते ही रहा करो। आप सब सर्वशक्तिमान् सर्वपालक प्रभुकी अर्चना करो। उसी एकको तत्परतासे अर्चना करते रहो, वह प्रभु ही परम रक्षक है, वह ही हमारा परम सहायक है।

क्यों स्तुति आराधना अर्चना करनी चाहिये?

अर्चना आराधनासे प्रभुके गुण स्मरण होते हैं उस भगवान्के प्रति कृपाओंके लिए हम धन्यवाद करते हैं; और हमें उसकी अत्यन्त समीपता प्राप्त होती है। अन्तमें उसका सायुज्यतक प्राप्त होता है, हममें अभिन्नता अनन्यता होती है, यह स्थिति अर्चना, आराधना, स्तुति तथा दिव्यगुण धारण करनेसे प्राप्त होती है। अर्चना आराधनामें भगवान्का गुणगान होता है और हमारी दिव्यगुणोंको धारण करनेमें रुचि बढती है। दिव्यगुण धारी मनुष्य भगवान्का उपासक होता है, वह भगवान्का अति सामीप्य, उसकी अत्यन्त निकटता अनुभव करता हुआ दिव्यगुण धारण करते रहनेसे उसकी जीवनचर्या, जीवन व्यवहार भगवान्के अनुकूल होनेसे वह भगवान्का उपासक हो जाता है। वह भगवान्का निकटवर्ती प्रेमपात्र हो जाता है।

सखाय आ निषीदत सविता स्तोम्यो नु नः।
दाता राधांसि शुम्भति ॥ (ऋ १।२२।८)

हे मनुष्यो! समताके भाव धारण करके परस्पर उपकारी होकर यहां आकर विराजो, आओ, हम सब परम पिता परमेश्वरकी स्तुति करें, वही सब ऐश्वर्योंका देनेवाला है, वह परम शोभित है और सबको शोभा देता है।

आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे।
सत्यसवं सवितारम् ॥ (ऋ ५।८२।१४)

सत्यके रक्षक, सत्यके पोषक, विश्वदेवकी सुन्दर सूक्तोंद्वारा आज वन्दना करें और सत्यं शिवं सुन्दरम् परम शक्तिमान् सच्चिदानन्द सवितादेवकी आज हम आराधना करें।

हम परम प्यारे भगवानकी सर्वभावसे अर्चना करें। हम मन, वचन, कर्मसे भगवान्की स्तुति करें और उसके गुण धारण करके उसके अनुकूल जीवन व्यवहार करते हुए हम भगवान्के प्यारे बनें, उसीके उपासक रहें, हम भगवान्की अतिसमीपता प्राप्त करें। हम अपने प्यारे भगवान्के निकटवर्ती सखा हो जाएं। हम भगवान्के साथ रहें और भगवान् हमारे साथ रहे। इस प्रकार हमारा और भगवानका अत्यंत घनिष्ट संबंध बना रहे। हम उसके रहें, सदा उसके रहें; और सबको हम विमल स्नेह देते रहें।

• • •

धूम्रपान

[प्रेषिका— श्रीमति शान्ताबेन केशवभाई पटेल]

महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी कहा करते थे कि 'मैं सदा इस कुटेवको जंगली, हानिकारक और गन्दी मानता हूं। अब तक मैं यह नहीं समझ पाया कि सिगरेट पीने या तम्बाकू खानेका तथा हुलास सूंघनेका इतना जबर-दस्त शोक दुनियाको क्यों है? जब कि दारू और भांगकी तरह तम्बाकू भी खराब है। नीरोग रहनेकी इच्छा करनेवाले प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि वह तम्बाकूका व्यसन छोडे दे।'

इसी प्रकार प्रत्येक सुधारवादी व्यक्तिने तम्बाकूके व्यसनको अच्छा नहीं बतलाया। कुछ भाई आयुर्वेदशास्त्रका सहारा लेकर धूम्रपानकी बुरी आदतको छुपानेका प्रयत्न किया करते हैं। किन्तु आयुर्वेदमें आजकी भान्ति एक दुर्व्यसनके रूपमें निकोटीन विष युक्त तम्बाकूके सेवनका विधान नहीं है। अपितु वात कफके शमनार्थ ऊर्ध्वजत्रुज रोगोंमें जो धूम्रपानका विधान किया है वह आयुर्वेदिक जडी बूटी हरेणु प्रियंगु इलायची केशर चन्दन सुगन्धबाला तेजपात दालचीनी खस मुलहटी जटामासी गुग्गुल अगर नागरमोथा इत्यादिका किया है और वह भी रोग विशेष एवं स्थिति विशेषमें, सामान्यतया नहीं। विस्तारसे चरक शास्त्रमें देख सकते हैं।

धूम्रपानकी हुक्केवाली पद्धति भी खराब थी किन्तु बीडी और सिगरेट तो उत्तरोत्तर एक दूसरेसे बढ चढकर है। यह परीक्षणोंसे सिद्ध हो चुका है कि तम्बाकूमें एक भयंकर विष है जो स्वास्थ्यके आधार भूत फुफ्फुसों (फेफडों) को रोग-ग्रस्त कर देता है। इसी प्रकार हृदय सम्बन्धी अनेक रोग तथा कैन्सर जैसी भयंकर व्याधियां भी धूम्रपानसे हो जाती हैं।

केन्द्रीय स्वास्थ्य परिषद्का एक सम्मेलन नवम्बर १९६३ में मद्रासमें हुआ जिसमें बच्चोंमें सिगरेट बीडी पीनेकी बढती हुई प्रवृत्ति पर चिन्ता व्यक्त की गई और १८ वर्षसे कम आयुके बच्चोंको सिगरेट बीडी बेचने पर प्रतिबन्ध लगाने पर भी विचार किया। इसी प्रकार सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान पर नियन्त्रण करने एवं पत्र-पत्रिकाओंमें विज्ञापन पर प्रति-बन्ध लगानेके प्रस्तावों पर भी विचार किया गया।

हमारे शास्त्रकारोंने बालक बालिकाओंके निर्माता तीन स्वीकार किये हैं— प्रथम माता, द्वितीय पिता और तृतीय गुरु वा आचार्य।

'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद'
(शतपथ ब्राह्मण १४।८।५।२)

जबतक घरमें माता पिता और पाठशाला वा स्कूल कालेजोंमें अध्यापक किसी भी रूपमें तम्बाकूका सेवन करते रहेंगे तबतक कोई शक्ति नहीं जो बालकोंको इस दुर्व्यसनसे बचा सके। डण्डेके डरसे कुछ समय तक दबाया जा सकता है किन्तु बुराईका सर्वथा त्याग नहीं करवाया जा सकता। इसलिए माता पिता और गुरुओं एवं समाज और राष्ट्रके नेताओंको इस व्यसनसे बचना चाहिये तथा देशकी भावी सन्ततिको बचाना चाहिये।

यदि इस प्रवृत्तिका विधिपूर्वक प्रतिरोध न किया गया तो देशवासियोंके स्वास्थ्य एवं चरित्रके लिये यह व्यसन घातक विषका कार्य करेगा और हमारा देश बलवान्, विद्वान् तथा चरित्रवान् नहीं हो सकेगा। माता और बहिनोंमें यह व्यसन स्वल्पमात्रामें है वह अपने पुत्रों और भाईयों एवं अन्य सम्ब-न्धियोंको भी इस विषपानसे बचानेमें अधिक सफल हो सकती हैं। उनके हाथमें इसके अनेक उपाय हैं। शास्त्रने माताको प्रथम गुरु माना है अतः मातायें इस विषयमें पहल करें।

यांत्रिक कसाईखाने बनाम देशोन्नति

(लेखक— श्री रवीन्द्र अग्निहोत्री एम्. ए., १६, केलाबाग, बरेली)

भारत सरकार अपने देशमें चार स्थानोंपर–जिनमें तीन प्रमुख बंदरगाह, कलकत्ता, बम्बई और मद्रास हैं और चौथा है देशकी राजधानी दिल्ली– दो–दो करोड रु. की लागतसे यांत्रिक कसाईखाने खोलने जा रही है जिनमें प्रतिवर्ष एक लाख गोवंश तथा तीन लाख अन्य पशुओंके वधकी व्यवस्था प्रारंभमें की जायगी। कलकत्तामें दानकुनीके पास कसाईखानेके लिए १०५ एकड वह भूमि भी ले ली गई है जिसमें बंगालका सर्वश्रेष्ठ चावल उगता है। उसी प्रकार बम्बईमें चेम्बूरके पास देवनारमें और दिल्लीके पास नाँगलोईमें कार्य प्रारंभ हो रहा है। कुछ क्षेत्रोंमें इस कार्यको घृणित, निंद्य एवं हेय बताकर इसका विरोध भी किया जा रहा है। चूँकि आज हमारे देशमें जनतंत्र सरकार है इसलिए और इसलिए भी कि सरकारके प्रमुख अंग प्रायः वे व्यक्ति हैं जो पराधीनताकालमें हमारे स्वाधीनता संग्रामके अग्रणी नेता रह चुके हैं, यह विश्वास किया जाता है कि सरकार राष्ट्रहितैषिणी है। ऐसी सरकारके किसी भी कार्यमें रोडा अटकाना राष्ट्रद्रोहकी संज्ञासे अभिहित किया जा सकता है। अतः गणतंत्रके हर सदस्यको सरकारी योजनासे परिचित होना आवश्यक है।

यांत्रिक कसाईखानेकी आवश्यकता

लगभग ५, ६ वर्षका समय हुआ, भारत सरकारके निमंत्रण पर अमेरिकाकी फोर्डफाउण्डेशन टीम यहाँकी खाद्यस्थितिका अध्ययन करने और विषम स्थितिको सुधारनेके लिए आई। कुछ स्थानोंका भ्रमण करनेके पश्चात् अपनी अदूरदर्शिताका परिचय देते हुए (अथवा पूर्वसे ही किसी सुनियोजित योजनानुसार) वह इस निष्कर्ष पर पहुंची कि भारतमें पशुधन– विशेष रूपसे गोवंश– इतनी अधिक संख्यामें है कि भूमिसे जो कुछ पैदा होता है वह उन्हींके लिए कम है, मनुष्योंके लिए भोज्य सामग्री उत्पन्न करनेको भूमि बचती ही नहीं। फिर इसमें भी ५० प्रतिशतके लगभग गोवंश अनुपयोगी है। दूसरे, चूँकि अधिकांश भारतवासी मांसाहारी नहीं हैं अतः ये पशु किसी लाभके न होकर अपने पालनपोषणके लिए भार ही हैं। इस स्थितिमें सुधार करनेके लिए उन्होंने दो उपाय निश्चित किए। एक तो यांत्रिक कसाईखानों द्वारा बडे पैमाने पर शीघ्र ही इन पशुओंका वध किया जाय। (गोमांस, हड्डी, चमडा तथा अन्य अंग विदेशोंको भेजें जाँय।) दूसरे, जनताके खानेकी आदतोंमें परिवर्तन करके उन्हें मांस खानेका अभ्यस्त बनाया जाय जिससे भोज्यसामग्रीकी समस्या दूर हो। अँधा क्या चाहे, दो आँखें। हमारे महाविज्ञानी नेताओंने दोनों ही सुझावोंको वेदवाक्यकी भाँति प्रामाणिक मानकर अमल करना शुरु कर दिया। पहले सुझावकी पूर्तिके लिए उसने डा. एन. ई. वर्नवर्गको बुला भेजा। (आप इन्हें कसाइयोंका लीडर भी कह सकते हैं क्योंकि यह कतलखाना–विशेषज्ञ कहे जाते हैं) और उन्हींके परामर्शके अनुसार उक्त चार कसाईखाने खोलनेकी योजना तैयार कर ली। दूसरे सुझावको क्रियारूपमें परिणत करनेके लिए सरकारने अप्रत्यक्ष और प्रत्यक्ष दोनों ही उपाय अपनाए। विद्यालयमें पढनेवाली छात्राओंको गृहविज्ञानकी अनिवार्य परीक्षामें अंडा, मछली, मांस आदि तैयार करना सिखाना और क्रियात्मक परीक्षामें उनसे बनवाना इसी नीतिका अंग है। पंजाब और म. प्र. के स्कूलोंमें बच्चोंको मुफ्त अंडे खिलाकर भी खानेकी आदतोंमें परिवर्तन किया जा रहा है। सरकारी नीति अब इतने जोरशोरसे प्रसारित एवं प्रचारित की जा रही है कि 'पशुपालन' नामसे खोले गए विभाग द्वारा गोपाष्टमीके पुनीत पर्व पर गोसंवर्धन सप्ताह मनाते हुए उ. प्र. के पशुपालन आयुक्तने अपना अर्थात् सरकारी निम्नलिखित संदेश सरकारी अर्थात् जनताके व्ययसे छपवा कर बटवाया—

' गायकी तरफ यदि केवल आर्थिक दृष्टिसे ही देखा जाय, उसे रुपए, आने, पाईमें तौला जाय तो यह निर्विवाद स्पष्ट है कि वह हमारे देहाती या शहरी अर्थशास्त्रमें नहीं बैठती, उसे अलग करना ही होगा और धीरे धीरे उसका स्थान भैंस तथा यन्त्रोंको देना होगा......यह सब उसी समय संभव होगा जब कि हम गोवधको सीधा अपनावें या वधके लिए दूसरे देशोंमें उसे जाने दें। '

सरकारने अपनी इस विचारधाराका प्रसार करनेमें कितनी सफलता प्राप्त की है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि कुछ ही वर्षपूर्व जिन चीजोंसे गोवधका साधारण भी सम्बन्ध होनेके कारण उनका व्यवहार तथा व्यापार करनेको चित्त नहीं चाहता था। आज मुसलमान, ईसाई तथा वे लोग ही नहीं जो काफी समयसे गोवधमें सहायक बनते आ रहे हैं, वरन् गायके शरीरमें ३३ करोड देवताओंका निवास और गायको वैतरणी पार करानेका एकमात्र साधन माननेवाले हिंदू भी लोभ, शौकीनी, संगदोष और मूर्खतासे गायके चर्म और चरबी आदि-से बनी चीजोंका व्यापार तथा व्यवहार बडी शानसे करते हैं। प्रो० जॉन हेनरी आनंदने लिखा है '.........अंग्रेजी भाषाका यही तो चमत्कार है कि वह अच्छे भले इन्सानको चाहे वह ईसाई हो या मुसलमान या हिन्दू सभीको त्रिशंकु बना देती है और ऐसे त्रिशंकुओंकी भारतमें कमी है ? ' शायद सरकार समस्त देशवासियोंको ऐसा ही त्रिशंकु बना देना चाहती है तभी तो अंग्रेजीको अबतक अनावश्यक महत्त्व दिए जा रही है।

अनुपयोगी गोवंश

अस्तु। विचारणीय यह है कि क्या वस्तुतः हमारा ५० प्रतिशत गोवंश अनुपयोगी अतः भारस्वरूप है ? और यदि वास्तवमें ऐसा ही है तो इनसे किस प्रकार छुटकारा पाया जाय ? गोवंशके अनुपयोगी पशुओंकी गिनती करनेसे पूर्व हमें भलीभाँति समझ लेना चाहिए कि गोवंशका मुख्य उत्पादन केवल दूध नहीं गोबर मूत्र और बैलशक्तिभी है। उसके अंगोंसे प्राप्त होनेवाले लाभ अन्य या सहायक उत्पादन (Bye-Products) हैं। तो गोवंश बूढा, लँगडा, लूला कैसा भी हो अनुपयोगी हो ही नहीं सकता। विचार कीजिए देशमें ८१ करोड एकडसे कुछ अधिक भूमि है जिसमेंसे ४२ करोड एकडमें पर्वत, वन, नदी, नगर सभी कुछ हैं। (सन १९६१ की रिपोर्टके आधार पर।) पर्वत और वनमें उत्पन्न होनेवाली और चारेके रूपमें प्रयुक्त हो सकनेवाली घास तथा अन्य वनस्पतिके उपयोगका यदि प्रबंध किया जाय तो अनुमान है कि ८० करोड पशुओंके लिए चारा प्राप्त हो सकता है। खेतीकी ४२ करोड एकड भूमिमें अनुमान है कि खाद्य सामग्रीके साथ प्रति एक एकडमें एक पशुके लिए वर्ष भरका चारा भी निकल आयगा। यदि सघन खेती की जाय तो अन्न और अन्य वस्तुओंके उत्पादनके साथ ही चाराभी बढेगा। अतः ४२ करोड पशु खेतीवाली भूमि पर आश्रित रह सकते हैं। इस प्रकार देशमें एक अरबसे भी अधिक पशुओंके लिए चारा उत्पन्न करने की क्षमता है।

सरकारी हिसाब यह है कि खेतीवाली भूमिके लिए प्रति एकड हर तीसरे वर्ष २० टन गोबरकी खाद चाहिए। खेती—योग्य भूमि है ४२ करोड एकड अर्थात् प्रति वर्ष १४ करोड एकड भूमिके लिए खाद चाहिए। सरकारी आँकडोंके अनुसार एक पशुसे प्रति वर्ष प्राप्त होनेवाली खादका औसत है लगभग ३ टन। इसका अर्थ यह हुआ कि एक एकड भूमि को २० टन खाद देनेके लिए ७ पशु चाहिए अर्थात् देशको ८८ करोड पशु चाहिए जब कि सन् १९६१ की पशु संख्याके अनुसार खाद देनेवाले पशुओंकी संख्या २२½ करोड ही है। ७५½ करोड पशुओंकी कमी है, रासायनिक खाद दालमें नमक बराबर काम दे सकती है, इससे अधिक प्रयोग करनेका अर्थ होगा—भूमिको सदैवके लिए बंजर बनाना। स्पष्ट है कि खाद्य समस्या पशुओंसे खाद प्राप्त करके ही हल होगी। यदि पशुसंख्या कम की जायगी तो जनता भूखों मरेगी— जैसा कि इस समय हो रहा है, हालत क्रमशः बदतर होती जायगी। पशुओंके बढनेसे अधिक खाद प्राप्त होनेपर अनाजकी उपज बढेगी। साथ ही दूध घीका उत्पादन भी बढेगा। दूधके बढनेसे अन्नकी खपत कम होगी स्वास्थ्य तो उत्तम बनेगा ही।

सरकार जिन पशुओंको अनुपयोगी बताती है उनकी निश्चित संख्या वह स्वयं आजतक न बता सकी। स्वर्गीय श्री नेहरूने उनकी संख्या ६० प्रतिशत बताई थी। उल्लिखित टीमके सदस्योंने ५० प्रतिशत तक बताई। कृषिमंत्रीने सन् १९५४ ई. में लोकसभामें दिए अपने एक वक्तव्यमें इनकी संख्या १० से ३० प्रतिशत तक बताई। Cattle preservation and Development committee ने अपनी रिपोर्टमें बताया—

' In the absence of any accurate and reliable figure, it is estimated that about 2 p. c. of the total cattle population in the country is unserviceable.

उल्लिखित आँकड़ोंमें दीख पड़नेवाले स्पष्ट वैभिन्न्यका क्या हम यह अर्थ लगाएं कि ये सभी आँकड़े गलत हैं या क्रमशः इन तथाकथित अनुपयोगी पशुओंका नाश किया जा रहा है ? तो इस विचारसे तो अब अनुपयोगी पशु बिल्कुल भी नहीं अथवा नगण्य होना चाहिए जब कि सरकारके कथनानुसार इन पशुओंकी संख्या अब पहलेसे अधिक ही है जिसका मुख्य कारण अनुपयोगी पशुओंके वधको प्रोत्साहन देनेके लोभमें वस्तुतः अति उपयोगी पशुओंका वध होना है; इसीलिए सन् १९५२से अबतक हमारे देशमें दूध देनेकी क्षमतामें ४०प्रतिशतके लगभग ह्रास हुआ है।

हमारे विचारसे अनुपयोगी पशु वही हो सकता है जो जितनी आय करावे उससे अधिक व्यय करावे। गोवंशके जिन पशुओंको सरकार अनुपयोगी बताती है उनपर प्रति पशु एक वर्षमें व्यय होता है २५ रु. से लेकर ३० रु, तक। ये आँकड़े हैं शिवपुरी तथा इन्दालाकी गोशालाओंके जिसकी पुष्टि सरकारी अनुमान भी करता है क्योंकि इसी कारण सरकार गोसदनके प्रत्येक पशुके व्ययकी सहायताके लिए १५ रु. प्रति पशु देती है जो पूरे व्ययका आधा भाग कहा जाता है। अब आप देखिये। नेशनल इनकम कमेटी (सन् १९५१) की रिपोर्ट पृष्ठ ६८ अपेन्डिक्स ४४ ए पर, एक ' बेकार ' गाय द्वारा ३८ रु. का गोबर और १४ रु. का मूत्र प्रतिवर्ष प्राप्त होना बताया है। इस रूपमें २२ रु. से लेकर २७ रु. तककी बचत एक ' अनुपयोगी ' गऊसे हुई। गोबरका प्रयोग यदि बिजली उत्पन्न करनेमें किया जावे तो यह बिजली जल विद्युत्से भी सस्ती पड़ती है। खादके रूपमें प्रयोग फिर भी हो सकता है। गोमूत्रका प्रयोग यदि वैज्ञानिक ढंगसे किया जावे तो इसका मूल्य १३६० रु. वार्षिक हो सकता है। Journal of veterinary Science and Animal Husbandry in India (1941) के निम्नलिखित शब्द ध्यान देने योग्य हैं—

' A cattle gives 3347 lbs of urine in a year from which 20 seers of Nitrogen, 32 seers of phosphates and 28 seers of Potash can be made. The market rate of these products is Rs. 8-00 and Rs. 20-00 per seer respectively.

इसका अर्थ हुआ १६० रु. की नाइट्रोजन, ६४० रु. की फास्फेट तथा ५६० रु. की पोटाश एक पशुके मूत्रसे वर्षभरमें प्राप्त हुई। यह अबसे २१ वर्ष पुराने मूल्य हैं। उनमें भी अब ड्योढ़ा दूना अन्तर अवश्य आया होगा। विचारशील पाठक स्वयं निर्णय करें कि गणतन्त्र सरकारको आठ करोड़ रु. १४ रु. से १३६० रु. कर देनेवाले वैज्ञानिक उपकरणों पर व्यय करना चाहिए– २२½ करोड़ पशुओंके समुचित पालन पोषण पर व्यय करना चाहिए, ७५½ करोड़ पशुओंकी कमी पूरी करनेमें व्यय करना चाहिए अथवा इतनी राशि प्रतिवर्ष प्रतिपशु द्वारा मिलनेका साधन खोकर उन मूक प्राणियोंकी निर्दयतापूर्वक जीवनलीला समाप्त कर देनेके कुत्सित प्रयासमें व्यय करना चाहिए।

सन् १९२१–२२ ई. में अंग्रेजी राज्यके समय जब सुदूर-पूर्वके देशोंको मांस भेजनेके लिए रतौना (म. प्र.) और सेनाके लिए मांसकी व्यवस्था करनेको लाहौर (अब पाकिस्तान) में यांत्रिक कसाईखाना बनना प्रारंभ हुआ तो जनताने उसका तीव्र सक्रिय विरोध किया, परिणामतः दोनों कसाईखाने नहीं बन सके। जब सर्वशक्तिसंपन्न अंग्रेजी साम्राज्यको भी जनमतके समक्ष अपना निर्णय बदलना पड़ा तो कोई कारण नहीं कि जनतन्त्र सरकार जनताके निर्णयको अपनी हठधर्मीसे ठुकरा सके। यह ध्यान रखें कि कसाईखाना एक बार बननेके बाद कोई आंदोलन उसके विरोधमें नहीं चल सकता और न चलेगा। मेरा निवेदन है कि भारत गोसेवक समाज, देवनार कत्लखाना निषेध कमेटी, सार्वदेशिक गोकृष्यादि रक्षिणी सभा (रजि०) लखनऊ, आर्यसमाज और उसकी शिरोमणि संस्थाएँ, जैन संस्थाएँ तथा राष्ट्रप्रेमी सभी संस्थाएँ और व्यक्ति जनताको वास्तविकतासे अवगत कराकर संगठित प्रयास द्वारा सबल जनमत जाग्रत करके देशके विनाशकी इस क्रूर लीलाके तांडव नृत्यको प्रारंभ होनेसे पूर्व ही समाप्त कर दें। अन्यथा हम गोभक्तोंका अस्तित्व ही मिट जायगा और देशमें ' त्रिशंकु ' ही शेष रह जायेंगे।

वैदिक विष्णु

(लेखक— पं. वीरसेन वेदश्रमी, वेद-सदन, महारानी रोड इन्दौर नगर- १)

विष्णुका वामनत्व

वैदिक साहित्यमें विष्णुका महत्वपूर्ण स्थान है। विष्णुका अर्थ व्यापक है तथा वेदमें उसके विशाल व्यापकत्वका वर्णन भी है तथापि उसको- 'वैष्णवो वामनः' (यजु. अ. २४ मं. १) वामन- अत्यन्त छोटा भी कहा गया है। अर्थात् वह लघुसे लघुतर है और बृहत्से भी बृहत्तर है। उसका व्यापकत्व वामनसे अर्थात् लघुतम केन्द्रसे ब्रह्माण्डमें सर्वत्र व्यापक हो जाता है। जिस अणुतम शक्तिशाली केन्द्रमें वामनत्वसे अखिल ब्रह्माण्डमें व्यापक होनेकी शक्ति है वह विष्णु शब्द वाच्य है और जिस-जिसमें यह धर्म आंशिक रूपसे है उसमें उतनी-उतनी ही मात्रामें वैष्णवत्व है।

विष्णुका व्यापकत्व

परमाणु स्वयं जड हैं, परन्तु परमात्माकी अपूर्व शक्तिके साथ प्रत्येक परमाणुमें जो महान् शक्ति निहित है उससे वह महान् शक्तिका भण्डार बना हुआ है। वह केन्द्रित सूक्ष्मतम शक्ति विष्णुका वामन रूप है। परमाणु अव्यक्त अवस्थासे व्यक्त अवस्थाको प्राप्त होकर, सूक्ष्म रूपसे स्थूलावस्थाको प्राप्त होनेपर अपनी व्याप्तिको अणुसे महत् तक बनाये रखनेमें समर्थ होते हैं। अतः वह परमात्मा अपने अतीन्द्रिय, सूक्ष्मत्व एवं व्यापकत्व- वैष्णव-धर्मसे परमाणुओंके माध्यमसे इस समस्त ब्रह्माण्डके तीनों पदोंमें- भूर्भुवः स्वः- इन तीनों लोकोंमें व्याप्त है। ये ही तीनों भूर्भुवः स्वः- पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक हैं। ये ही अग्नि, वायु और सूर्य हैं। अतः अव्यक्त, सूक्ष्म एवं व्यापक विष्णुके व्यक्त, दृश्यमान एवं केन्द्रीभूत ये तीनों रूप पृथिवीपर अग्नि, अन्तरिक्षमें वायु और द्युलोकमें सूर्य मान्य किये गये। इसलिये विष्णुके वर्णन करनेवाले मन्त्रोंमें उस सूक्ष्म, जगन्निर्मातृ शक्तिसे लेकर स्थूल रूपमें दृश्यमान अग्नि, वायु और सूर्यका भी वर्णन प्राप्त होता है।

विष्णुका विचक्रमण

परमात्माकी सृष्टि रचनामें प्रथम गति साम्यावस्था प्रकृतिमें जो होती है वह प्रकृतिकी अत्यन्त सूक्ष्मतम-अदृश्य-स्थितिमें होती है। मूल प्रकृतिमें जो परमात्माकी शक्तिकी व्यापकता और उससे जो गति होती है वह प्रथम गति है। वही स्थिति और गति सूक्ष्म ब्रह्माण्डमें व्याप्त होती है तथा वही स्थूल ब्रह्माण्डमें भी व्याप्त हो जाती है। जो मूलमें शक्ति व्याप्त होगी उसीके उत्तरोत्तर विकासका प्रकाश, उसीका विचक्रमण, उसीका पराक्रम, उसीकी उत्क्रान्ति तूलमें भी प्रतीत होगी। तूलमें या स्थूल रूपमें उसके गुणोंके दर्शनसे उसकी सत्ताकी अनुभूति की जा सकती है। परन्तु उसकी सुगुप्त मूल शक्तिकी अनुभूति सर्वसाधारणके लिये अगम्य है। वेदमें इस स्थितिको प्रकट करनेके लिये कहा है-

> इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
> समूढमस्य पांऽसुरे॥ (यजु. ५।१५)

वह जगदीश्वर इस सब जगत्को अत्यन्त सूक्ष्म दशासे इस महान् पिण्डाकार स्थितितक बनाता है। वही इस ब्रह्माण्डको अदृश्य, सूक्ष्म एवं स्थूल इन तीनों प्रकारसे धारण कर रहा है। अन्तरिक्ष यद्यपि खाली प्रतीत होता है तथापि उसमें भी उसकी व्याप्ति अत्यन्त गुप्त रूपसे, उसके भी परमाणुओंमें विद्यमान है। अर्थात् ब्रह्माण्डका प्रत्येक क्षेत्र चाहे वह हमें रिक्त ही प्रतीत होता हो, वह भी परमाणुओंसे व्याप्त है और वह व्यापक विष्णु परमेश्वर उसमें भी व्याप्त होकर त्रिविध प्रकारसे सबका रक्षण, पोषण एवं धारण कर रहा है। उसकी ये शक्तियां-समूढ- अत्यन्त गुप्त हैं।

यही विष्णुका वैशिष्ट्य है कि वह अत्यन्त गुप्त रूपसे, अदृश्य रूपमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणुओंमें भी है और विश्वकी तीनों स्थितियोंमें उसी सूक्ष्म स्थितिको स्थूल स्थितियोंमें विचक्रमण कर रहा है।

समूढमस्य पांसुरे– यह प्रकृतिकी अदृश्य अवस्था या अव्यक्त अवस्थामें भी परमात्माकी व्यापकताको प्रकट करता है। व्यापकत्व धर्मसे उसकी विष्णु संज्ञा है। अतः विष्णुका वह वैष्णव रूप ब्रह्माण्डमें क्रमशः उत्तरोत्तर सब पदार्थोंमें और सृष्टि रचनामें प्रकट हो रहा है।

इन तीनों उत्तम, मध्यम एवं अधम– अव्यक्त, सूक्ष्म एवं स्थूल–प्रकाशमान्, प्रकाशरहित और अदृश्य परमाणु रूप सृष्टि– भूलोक, भुवर्लोक एवं स्वर्लोक पृथिवी, द्यौ और अन्तरिक्ष– तथा मन, वाक् एवं प्राणमय सृष्टिकी स्थितियोंमें वह अहिंसनीय, दयालु एवं रक्षक विष्णु–व्यापक परमात्मा अपने अहिंसनीय, दयालु एवं रक्षक, धारक गुणोंके कारण– कारण, सूक्ष्म और स्थूल कार्य रूप जगत्का आक्रमण कर रहा है। सर्वत्र सूक्ष्मसे सूक्ष्म कारणमें और स्थूलसे स्थूल पिण्डमें जो क्रियाशीलता प्रतीत हो रही है वही उस विष्णुका आक्रमण है। वह आक्रमण सर्वत्र है। वेद विष्णुकी इस स्थितिको निम्न शब्दोंमें प्रकट कर रहा है—

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः।
अतो धर्माणि धारयन्॥ (यजु. ३४।४३)

अर्थात् हे मनुष्यो! जो विष्णु–व्यापक परमेश्वर–अहिंसा धर्मवाला होनेसे दयालु है, सर्व रक्षक है, वह पुण्य रूप कर्मोंका धारक, सब लोकलोकान्तरोंका धारण करनेसे जानने या प्राप्त होने योग्य कारण, सूक्ष्म और स्थूल इस प्रकारकी तीनों स्थितियोंके जगत्का आक्रमण करता है।

विष्णु तीनों लोकोंमें उत्क्रान्ति करता है– आक्रमण करता है। उसकी गतिशीलता सर्वत्र विद्यमान है। उसके वर्चस्वका, उसकी जयशीलताका कोई पराभव नहीं कर सकता। उसकी क्रमपूर्वक गति, कारणसे कार्यतत्वमें निरन्तर अबाध रूपसे गतिकर रही है। प्रत्येक परमाणुमें जो गति है वह अपने केन्द्रसे अपनी परिधिमें व्याप्त होती रहती है। अतः ब्रह्माण्डके केन्द्रसे– ब्रह्माण्डकी नाभि विष्णुसे–समस्त ब्रह्माण्ड रूपी परिधिमें जो गति व्याप्त हो रही है वह वैष्णवी गति है। वेद कहता है—

विष्णोर्विक्रमणमसि विष्णोर्विक्रान्तमसि।
विष्णोः क्रान्तमसि॥ (यजु. अ. १०।१९)

समस्त संसारके कारण, सूक्ष्म और स्थूल रूपमें उस विष्णुका पराक्रम कार्य कर रहा है। वह इस स्थूल जगत्में पराक्रम सहित है। वह व्यापक वायुके बीचमें अनेक प्रकारसे गति कर रहा है। वह व्यापक तेजस् तत्वके बीच सब क्रियाओंका आधारभूत है। वह सब माध्यमोंका माध्यम है। उसीके माध्यमसे विविध माध्यम सृष्टिमें एक दूसरेके सहयोगसे क्रियाशील हैं। इस समस्त ब्रह्माण्डमें तीन प्रकारकी गतियां हैं जिन्हें गति, आगति और आवर्तनके रूपमें हम देख सकते हैं। केन्द्रसे परिधिकी ओर गति होती है। परिधिसे केन्द्रकी ओर आगति होती है और केन्द्रसे चारों ओरकी आवर्तन गति है। ये तीनों प्रकारकी गतियां उसी विष्णुके विचक्रमण, तीन पद–गति रूप हैं। गति, गमन आदि किया हम चरणोंसे–पदोंसे–करते हैं अतः विष्णुके तीन पद, चरण नामसे लोक भाषामें व्यवहृत हुए।

विष्णुका अक्षरानुसार विचक्रमण

विष्णुका यह विचक्रमण, अक्षर और छन्दानुसार इस ब्रह्माण्डमें होता है जैसा कि निम्न मन्त्रमें वर्णित है—

विष्णुस्त्र्यक्षरेण त्रींल्लोकानुदजयत्। (यजु. अ. ९।३१)

अर्थात् विष्णु अक्षर त्रयात्मक छन्दसे भू–र्भुवः–स्वः इन तीन लोकोंको जीतता है– उनको उत्तम करता है। उनमें अपनी क्रियाशीलता, नियमन एवं व्यवस्थादि करता है। यह त्र्यक्षर छन्द प्रणव ही है। विष्णु इन्हीं तीन अक्षरोंसे त्रिलोकीका प्रशासन कर रहा है। इसलिये जब हम भी उस विष्णुकी–परमात्माकी– आराधना करते हैं तो इन्हीं तीन अक्षरोंसे प्रारम्भ करके अपने पिण्डरूपी त्रिलोकी में उसे स्थापित करते हैं और अपनी उपासनाको इसी महामन्त्रके द्वारा अखिल ब्रह्माण्डकी विविध शक्तियोंसे जो पृथक् पृथक् स्थानोंमें विद्यमान हैं उनसे संयुक्त कर लेते हैं। उस समय हमारा शरीर अद्भुत शक्तिका पुंज हो जाता है। पुनः इससे अद्भुत दर्शन, अद्भुत श्रवण, गन्ध, रस, स्पर्शादि सम्पन्न होने लगते हैं और परम पवित्र वाणीका भी उद्गम होने लगता है।

विष्णुका छन्दानुसार विचक्रमण

सर्वप्रथम तीन लोकोंको त्र्यक्षरसे विष्णुने जीता अर्थात् उसको अपनी गतिकी परिधिमें– स्वनियन्त्रणमें–किया।

परन्तु अक्षरोंसे जब छन्दोंकी विविध परिधियोंका निर्माण होने लगता है तो दैवी, आर्षी, प्राजापत्यादि विविध रूपोंमें अनेकविध गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती आदि छन्दोंका निर्माण होने लगता है और उससे उत्तरोत्तर त्रिलोकीके प्रवृद्ध, विकसित या व्यक्त रूपोंमें भी अव्यक्तसे व्यक्त रूप संघातोंतक, मूलसे तूलतक उसी व्यापक विष्णु-परमेश्वर-की क्रमशः छान्दस शक्तियां अपने-अपने स्वरके साथ त्रिलोकीमें व्याप्त होने लगती हैं और वे छन्दानुसार अपने-अपने नियत स्थानों में हमारे लिये भी प्रभावशाली हो जाती हैं। इस कारण हम उन छन्दोंके साथ तत्तत् लोकोंमें-पदोंमें-स्थानोंमें अक्षरोंके माध्यमसे अदृष्ट क्रियाशीलता उत्पन्न कर सकनेमें समर्थ हो जाते हैं।

छन्दोंकी इस अदृष्ट क्रियाशीलतासे व्यक्त सृष्टिमें विष्णुके माध्यमसे अपनी कामनानुकूल क्रियायें सिद्ध हो सकती हैं, इसका प्रतिपादन निम्न मन्त्रमें है—

> दिवि विष्णुर्व्यक्रंस्त जागतेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रंस्त त्रैष्टुभेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रंस्त गायत्रेण च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः॥
>
> (यजु. २।२५)

अर्थात् विष्णु जगती छन्दके द्वारा द्युलोकमें क्रियाशील होता है और वहांसे वह विशेष रूपसे विभक्त होकर-क्रियाशील होकर-हमसे जो द्वेष करता है या जिससे हम द्वेष करते हैं उसका विनाश करता है। इसी प्रकार विष्णु त्रिष्टुप् छन्दके द्वारा अन्तरिक्षमें और गायत्री छन्द द्वारा पृथिवीमें क्रियाशील होकर उन उन स्थानोंमें विभागको प्राप्त होकर, शत्रुओंको यज्ञके शुभभागसे रहित करके उनको नष्ट कर देता है।

यज्ञो वै विष्णुः

छान्दस क्रियाके साथ विष्णुकी जिस क्रियाशीलताका वर्णन उपरोक्त मन्त्रमें वर्णित है वह विष्णुका आधिदैविक रूप है। विष्णुकी एक गति जो मूलसे उत्पन्न होकर तूलतक या केन्द्रसे परिधिकी ओर जाती है वह इस मन्त्रमें वर्णित शक्तिसे भिन्न है। वह विष्णुकी अव्यक्त शक्ति है और यह संघातात्मक व्यक्त शक्ति है। तूलमें हम जिस विष्णुके आश्रयसे आवर्तन क्रिया तथा आगतिकी क्रिया उत्पन्न करनेमें समर्थ होते हैं वह वामनरूपी होकर तीनों लोकोंमें छन्दोंके आश्रयसे व्याप्त होनेका सामर्थ्य रखता है।

प्रस्तुत मन्त्रमें विष्णुके उस प्रवृद्ध, विकसित या व्यक्त तत्व जिसमें मूल छन्दसे आर्षी छन्दोंके रूपमें विकसिततत्वको विष्णुकी संज्ञा प्राप्त है वह अग्नितत्व है। सृष्टिका वह पुरोहित है। अग्नि अव्यक्तरूपमें सब पदार्थोंमें व्याप्त है। उसीको जागृत करके, उसके आश्रयसे जब यज्ञ करके, मन्त्रोंकी छन्द प्रक्रियासे विविध लोकोंमें- स्थानोंमें- उसे व्याप्त किया जाता है तो उसके आश्रयसे हमारी कामनायें फलीभूत होती हैं। यह विष्णुकी व्यक्त स्थिति " यज्ञो वै विष्णुः " नामसे प्रसिद्ध है। व्यक्त विष्णु-यज्ञसे-अव्यक्ततक जो वैष्णवरूप है अर्थात् व्यापक परमात्माकी जो विविध शक्तियां हैं उसकी साधनाका आधार देवयज्ञरूपी विष्णु ही है। यह भी वामनसे विराट् हो जाता है।

असुरनाशक विष्णु

इस यज्ञरूपी विष्णुकी साधनासे शत्रुओंका नाश होता है यह निम्न मन्त्रमें भी प्रतिपादित है—

> विष्णोः क्रमोसि सपत्नहा गायत्रं छन्द आरोह पृथिवीमनुविक्रमस्व। विष्णोः क्रमोस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्द आरोहान्तरिक्षमनुविक्रमस्व। विष्णोः क्रमोस्यरातीयतोहन्ता जागतं छन्द आरोह दिवमनुविक्रमस्व। विष्णोः क्रमोसि शत्रूयतोहन्तानुष्टुभं छन्द आरोह दिशोनुविक्रमस्व॥ (यजु. १२।५)

पूर्व मन्त्रमें विष्णुके विक्रमणका क्रम द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी इस प्रकार बताया था। इस मन्त्रने पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक इस क्रमसे वर्णन किया गया है। तात्पर्य यह है कि यज्ञरूपी विष्णु दोनों क्रमोंसे विक्रमण करके अर्थात् गतिशील होकर असुरोंका-शत्रुओंका-विरोधी या घातक तत्वोंका उन्मूलन करता है। गायत्री छन्दाश्रित यज्ञरूपी विष्णुका क्रमण अन्तरिक्षस्थ विरोधी या घातक तत्वोंका विनाश करनेमें समर्थ होता है। जगती छन्दाश्रित यज्ञरूपी विष्णुका क्रमण अदानशील शक्तियोंका विनाशक है। अनुष्टुप् छन्दाश्रित विष्णुका क्रमण विनाश करनेको उद्यतोंका विविध दिशाओंमें नाश करनेवाला है।

इस मन्त्रमें जिस विष्णुका वर्णन है वह यज्ञाग्नि ही है। जैसा कि—

'स यः स विष्णुर्यज्ञः स यज्ञोऽयमेव स योऽयमग्निरुखायाम्' (शतपथ ६।७।२।११)

इसमें प्रतिपादित है।

यज्ञरक्षक विष्णु

यह यज्ञरूपी विष्णु अनेक प्रकारसे यजमान और यज्ञकर्ताओंकी रक्षा करता है तथा यज्ञकी भी रक्षा करता है। अतः यज्ञको अत्यन्त श्रद्धा, प्रेम एवं पवित्रतासे ग्रहण करना चाहिये और इस यज्ञके जो विविध उपकरण हैं उनको भी अत्यन्त प्रेमसे उत्तम स्थानमें स्थापित करना चाहिये। मनकी आन्तरिक भावनाओंका प्रकाश और उनका कार्यके साथ सम्मिश्रण या विनियोग इसी प्रकारसे कर सकते हैं। श्रद्धा एवं प्रेमपूर्वक उत्तम पवित्र स्थानमें यज्ञको एवं यज्ञके पात्रोंको स्थापित करनेके लिये तथा यज्ञसे रक्षाके लिये निम्न मन्त्र उपदेश कर रहा है—

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद। घृताच्यस्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद, घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद। ध्रुवा प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद। ध्रुवा असदन्नृतस्य योनौ ताविष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम्॥ (यजु. २।६)

अर्थात् जो यज्ञके उपकरण पात्रादि जुहू, उपभृत् तथा ध्रुवा आदि नामकी स्रुक् हैं एवं जो यज्ञकी हवि है उन सबके लिये– 'प्रियेण धाम्ना प्रियं सद आसीद'– यह कहा गया है। अर्थात् इनको शोभायमान, शुद्ध, पवित्र, स्थान, नाम एवं रूपके साथ उत्तम रीतिसे स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार श्रद्धा प्रेमपूर्वक उनकी स्थापनासे यज्ञ भी– 'ऋतस्य योनिः'– पवित्रताका कारण, पवित्रताका जनक बन जाता है और पुनः 'विष्णो पाहि'– हे विष्णुरूपी यज्ञ! तुम इन सबकी रक्षा करो और 'पाहि यज्ञम्'– यज्ञकी रक्षा करो 'पाहि यज्ञपतिम्'– यज्ञपतिकी रक्षा करो तथा 'पाहि मां यज्ञन्यम्'– यज्ञ करानेवाले हम अध्वर्यु आदिकी रक्षा करो।

स्तोतव्य विष्णु

इस प्रकार विष्णुरूपी यज्ञकी साधना हमारे जीवनकी उपयोगिताके लिये आवश्यक हो जाती है। इन्हीं अनेक प्रकारके गुणोंके कारण विष्णुकी सर्वत्र स्थानोंमें स्तुति की जाती है तथा उसके गुणों एवं महिमाका सर्वत्र स्तवन किया जाता है। वेद कहता है कि

प्रतद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो-गिरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा॥ (यजु. ५,२०)

अर्थात् उन तीनों प्रकारके उत्तम, मध्यम एवं अधम लोकोंमें जिनमें प्राणी निवास करते हैं उनमें अपने पराक्रमसे, सर्वत्र व्याप्त, वाणीके स्वामी विष्णुकी सब स्तुति करते हैं। अतः हमें भी उनकी स्तुति करनी चाहिये। उसको हम कभी नहीं भूलें। हम भी उसके गुण एवं पराक्रमोंका अच्छी प्रकार कथन तथा स्तवन करें, जैसा कि निम्न मन्त्रमें आदेश है–

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि। (यजु. ५।१८)

हम लोग उस विष्णुके पराक्रमों, कार्योंका स्तवन करें जो सुख रूप है और जिसने पृथिवीपर्यन्त समस्त परमाणु समूह रूप लोकोंका निर्माण किया है। अतः जगद्रचयिताकी स्तुति करके हम उसके प्रति कृतज्ञ तो बनते ही हैं अपितु उन गुणोंके स्तवनसे सृष्टिके महान् विज्ञानका अध्ययन भी कर सकते हैं।

विष्णुका परमपद

यह जो भौतिक यज्ञ है, यह भी विष्णु पदवाच्य है। यह उसका वामन रूप है। अतः इस यज्ञकी साधनासे जब हम क्रमशः उत्तरोत्तर सूक्ष्म साधनाओंमें प्रवेश करेंगे तो विष्णुका उत्तरोत्तर सूक्ष्म विक्रमण, उसका चरण–चलन–गति, पाद विक्षेप सर्वत्र दृष्टिगोचर होता जायगा और उसकी परम सूक्ष्म स्थितिको भी ज्ञानदृष्टिसे निरन्तर देख सकेंगे जिस प्रकारसे योगी–ऋषि–मुनि सदासे देखते–अनुभव करते आये हैं—

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्॥ (यजु. ६।५)

अर्थात् इस दृश्यमान जगत्‌में जो विष्णुका व्यापक रूप है, उससे परे अत्यन्त गूढ उसका परमपद है। स्तुति करनेवाले योगी, वेदवेत्ताजन उसके अत्यन्त उत्तम पदको सूर्यके प्रकाशमें जिस प्रकार नेत्रकी दर्शनशक्ति व्याप्त होकर विशाल विश्वका दर्शन करती है, इसी प्रकार योगीजन समाधिके साहचर्यसे सदा देखते हैं उसका अनुभव करते हैं। उसी

प्रकार हम सबको भी उसके परमपदके दर्शनका प्रयत्न करना चाहिये।

वह परम पद कैसा है ?

जिस परमपदको प्राप्त करने पर अन्य कुछ प्राप्त करने योग्य नहीं रहता है उसका वर्णन निम्न मन्त्र कर रहा है—

या ते धामान्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृंगा अयासः। अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभाति भूरि— (यजु. ६।३)

अर्थात् जिन तेरे धामोंको हम जानने वा प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं जिनमें स्तुति करने योग्य, सर्वव्यापक विष्णु-परमेश्वरकी अत्यन्त प्रकाशित किरणें फैली हैं, इन्हींमें उस परमेश्वरका सब प्रकारका उत्तम परमपद विद्वानोंने बहुधा अवधारण किया है। इससे ज्ञात होता है कि विष्णुका वह परमपद अत्यन्त प्रकाशमय है और योगी, यती, विद्वान् उस परमपदको प्राप्त करते हैं। परन्तु योगी-यती, ऋषि-मुनियोंके अतिरिक्त भी जो जनलोकमें प्रवृत्त हैं वे भी उस परमात्माकी उपासनासे– यज्ञादिका अनुष्ठान करके विविध ऐश्वर्योंको प्राप्त कर सकते हैं। यह इसी मन्त्रके निम्न उत्तरार्ध भागमें प्रतिपादित है—

ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि। ब्रह्म दृंह क्षत्रं दृंहायुर्दृंह प्रजां दृंह॥ (यजु. ६।३)

अर्थात् परमेश्वर वा वेद विज्ञान, राज्य और वीरोंकी चाहना तथा धनकी पुष्टिके विभाग करनेवाले आपको मैं विधिवत् तर्कोंसे समझता हूं। जिससे आप– परमात्माके प्रति मुझमें प्रीति एवं वेदको दृढतासे स्थापित करें। राज्य और धनुर्वेदवेत्ता क्षत्रियोंको उन्नत करें। हमारी अवस्थाको बढाइये और हमारी सन्तान व रक्षा करने योग्य प्रजाजनोंको उन्नत कीजिये। इस प्रकार सांसारिक ऐश्वर्योंकी भी सांसारिक जनोंको प्राप्ति होती है।

परमपद कौन प्राप्त करते हैं ?

उस विष्णुके परमपदकी प्राप्ति मूर्ख, आलसी और प्रमादी जन नहीं कर सकते। उसके लिये उत्तम मेधा, कठोर तप और स्तुतिकी आवश्यकता है, जैसा कि निम्न मन्त्रमें वर्णित है—

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृहवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्॥ (यजु. ३४।४४)

अर्थात् हे मनुष्यो! जो अविद्या रूप निद्रासे उठके चेतन हुए, विशेषकर स्तुति करने योग्य वा ईश्वरकी स्तुति करने हारे, बुद्धिमान्, योगी लोग, सर्वत्र अभिव्यापक परमात्माका जो उत्तम प्राप्त होने योग्य मोक्षदायी स्वरूप है उसको सम्यक् प्रकाशित करते हैं। उनके सत्संगसे अन्य लोग भी वैसे हो सकते हैं।

विष्णुकी मित्रताकी प्राप्ति

विष्णुकी मित्रता प्राप्त करनेके लिये उसके जो विविध प्रकारके कर्म हैं उनका दर्शन करना होगा और उसके अनुकूल अपना सदाचार निर्माण करना होगा, तभी हम उस विष्णुके प्रिय हो सकते हैं, जैसा कि निम्न वेदमन्त्रमें वर्णित है—

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा॥ (यजु. ६।४)

अर्थात् परमेश्वरका सदाचार युक्त मित्र उस व्यापककी सृष्टिमें जो विविध प्रकारके सत्य गुण हैं उनका सूक्ष्म निरीक्षण करके उस विज्ञानसे अनेक शुभ गुण कर्मोंका ग्रहण एवं विस्तार करनेके लिये नियमबद्ध होकर आचरण करना स्वीकार करता है। वैसे तुम सब भी परमेश्वरके उत्तम गुणोंका निरीक्षण करके उनपर आचरण करते हुए, उसकी मित्रता सम्पादन करो।

विष्णुकी उपासनाका लाभ

विष्णुकी उपासनाके अनेक लाभोंका वर्णन प्रकरणान्तरसे पूर्व हुआ है। निम्न मन्त्रमें सांसारिक जनोंके लिये, सांसारिक ऐश्वर्य, धनादिकी प्राप्ति हो सकती है, यह प्रतिपादन किया है—

दिवो वा विष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात्। उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा॥ (यजु. ५।१९)

अर्थात् हे विष्णो! द्युलोकसे प्राप्त होने योग्य धनैश्वर्योंको हमें प्रदान कीजिये तथा पृथिवीके द्वारा प्राप्त होने योग्य धनैश्वर्योंको हमें प्रदान कीजिये। हमारे दोनों हाथ धनोंसे भर

दीजिये और हमें दाईं और बाईं ओरसे सब प्रकारके सुख धनादि प्रदान कीजिये।

विष्णुका कार्य

पूर्व मन्त्रमें विष्णुके अनेक कार्योंका वर्णन दृष्टिगोचर हो रहा है परन्तु निम्न मन्त्र और भी विशेष वर्णन अन्न, गौ, वाणी, पृथिवी आदिको अपनी विविध प्रकारकी शक्तिकी रश्मियोंसे धारण करनेका कर रहा है—

इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनवे दशस्या। व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥ (यजु. ५।१६)

अर्थात् हे सर्वव्यापी विष्णु—जगदीश्वर ! आप उत्तम अन्न युक्त, प्रशंसनीय गौ, वाणी आदि युक्त, प्रजा व पशु युक्त, बहुत मिश्रित वस्तुओंके सहित जो भूमि है उसको निश्चय करके एवं उत्पन्न हुए सब जगत्को तथा वेदवाणीको ज्ञान प्रकाशादि गुणोंसे सब ओरसे धारण, स्तम्भन आदि करते हो, इस प्रकार समस्त जगत्को विष्णु अपनी प्रकाशमय रश्मियोंसे धारण कर रहा है, यह इस मन्त्रसे प्रकट हो रहा है। एक अन्य मन्त्रमें भी कतिपय निम्न कार्योंका वर्णन है—

विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि। यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा ॥
(यजु. ४।१८)

अर्थात् सर्व व्यापक परमात्माके सामर्थ्यकी स्तुति करता हूं जिसने सब लोकोंको उत्पन्न किया और जिसने ऊपर नीचे सर्वत्र सृष्टिका निर्माण करते हुए सर्वोत्कृष्ट मुक्ति स्थानको रोक रखा है। इसलिये सब लोग उसकी स्तुति करते हैं। इस प्रकार इस मन्त्रमें विष्णुका सब लोक लोकान्तरोंका बनाना और उसका धारण करना वर्णित है अतएव उसको उपास्य भी बताया है।

यज्ञका वैष्णवत्व

यज्ञाग्नि विष्णु है। यज्ञकुंड उस अग्निका आधार है। अतः कुण्डाकृति अग्निका शिखायुक्त चित्रण, चिह्न वैष्णवत्वकी प्रतीति करानेवाला है। वही चिह्न लोकमें ♈ इस प्रकार व्यवहृत हुआ। कुंडका रूप V यह है और उसके मध्यमें अग्नि शिखाको प्रकट करनेवाली मध्यकी रेखा है। कुंडमें प्रदीप्त अग्नि ही यज्ञके स्वरूपको प्रकट करती है। यही पवित्र यज्ञाग्नि विष्णु है। अतः वेदने इस यज्ञाग्निको विष्णुके निमित्त शरीर रूपमें भी वर्णित किया है—

अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा। (यजु. ५।१)

अर्थात् अग्निका शरीर है। जिस कुंडके आश्रयसे वह रहे वह उसका एक प्रकारसे शरीर है। परन्तु प्रज्वलित अग्नि तो उसका स्वयं शरीर है ही। यज्ञकी समिधायें भी अग्निका शरीर हैं। इस प्रकार यज्ञ अपने सम्पूर्ण अंगोंसे शरीर नामसे ही पूर्णताको प्रकट करता है। यज्ञका अपने सम्पूर्ण अंग–उपांगोंसे आयोजन विष्णु–व्यापक परमात्माके लिये स्वीकार किया जाता है, अतः– 'विष्णवे त्वा'– तुझ यज्ञको विष्णुके लिये स्थापित करता हूं या ग्रहण करता हूं। अतः अग्निका विष्णुसे सम्बन्ध है। उस अग्निको प्रदीप्त करनेके लिये हविका प्रयोग करना चाहिये जैसा कि निम्न मन्त्रमें बताया है—

अग्नेर्जनित्रमसि। (यजु. ५।२)

अर्थात् अग्निके उत्पन्न करनेके लिये हवि है। हविमें घृत, शाकल्य, समिधा आदि वस्तुएं होती हैं। इस प्रकार विष्णु रूपी यज्ञ इस पृथिवी पर लघुरूपसे विशाल त्रिलोकीमें व्याप्त होनेके लिये विक्रमण करता है। इसको घृतादिसे अत्यन्त समिद्ध करना चाहिये जैसा कि निम्न मन्त्रमें वर्णित है—

उरुविष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि। घृतं घृतयोने पिब प्र प्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ॥
(यजु. ५।३८)

अर्थात् हे विष्णु यज्ञाग्ने ! तू महान् पराक्रम कर। हमारे लिये पृथिवी, जल, वायु आदिका शोधन करके जीवनोपयोगी बनाकर, उनको निवास योग्य बना। हे घृतयोने ! अर्थात् यज्ञाग्ने ! दीप्तिके कारण भूत घृतका सेवन करो और इस प्रकार समृद्ध होकर यज्ञानुष्ठान कर्ताकी वृद्धि करो।

इस मन्त्रमें विष्णुके विक्रमणके लिये यज्ञमें घृतकी विशेष परिमाणमें आहुति प्रदान करनेको कहा है और उससे वह विष्णु हमारे लिये निवास योग्य जीवनप्रद स्थानोंका निर्माण करता है। यज्ञ द्वारा वायुकी शुद्धि होती है। उससे आरोग्यताकी शक्ति प्राप्त होती है और उसमें घृत तथा विविध हवियोंसे पुष्टिकी शक्ति संग्रहीत होती है। उस वायुके पृथिवी

एवं अन्तरिक्षमें विचरणसे सर्वत्र शुद्धि आरोग्यता एवं पुष्टिकी शक्ति- सामर्थ्य-पृथिवी एवं जलमें तथा वृक्ष वनस्पति, फल, अन्नादिमें, रसोंमें व्याप्त हो जाती है । इस प्रकार यज्ञ द्वारा जीवनका क्षेत्र व्यापक हो जाता है । अतः विष्णु हमारे जीवनके लिये अत्यन्त आवश्यक है ।

जो विष्णु पृथिवी पर वामन है वही अन्तरिक्ष और द्युलोक में विराट् हो जाता है । जो विष्णु अन्तरिक्ष वामन है- सूक्ष्म है, वह अन्तरिक्ष और द्युलोकमें सूक्ष्मतर होकर, आयतनमें विस्तारको प्राप्त होकर विराट् हो जाता है । जो द्युलोकमें वामन रूपसे प्रतीत हो रहा है वह अपनी ज्योति, प्रकाश, ताप, आकर्षण और प्राण रूपसे चराचर जगत्में अपने गुणोंसे विराट् हो जाता है ।

पृथिवी पर वामन विष्णु अग्नि है । अन्तरिक्षमें वही इन्द्र अर्थात् विद्युत् एवं वायु है और द्युलोकमें वह सूर्य है ! मोक्षमें वह परब्रह्म विष्णु है । ये सारी प्रक्रिया यज्ञमय हैं अतः इस सृष्टिका विशाल यज्ञ विष्णु ही है । परमाणुमें अनन्त शक्ति है अतः वह वामन विष्णु है । वायुमें महान् शक्ति है वह सूक्ष्म है अतः वह वामन विष्णु है सूर्यमें महान् शक्ति है । अखिल ब्रह्मांडका वह प्राण है । वह विश्वधारक है । परन्तु विशाल विश्वकी अपेक्षा वह बहुत छोटा है अतः वह भी वामन विष्णु है । यही सृष्टिका यज्ञ है । लघुशक्तिका विशालमें परिवर्तित होना और उस विशालका पुनः केन्द्रमें संभरण वैष्णवी विद्या है । यही भौतिक यज्ञके द्वारा हम प्रत्यक्ष करते हैं और व्यवहारमें लाते हैं ।

अग्नि जो इतनी सूक्ष्म है कि दृश्यमान भी नहीं, उसको एक बिन्दु मात्र-कण मात्र स्थानसे जागृत करते हैं- प्रबुद्ध करते हैं । वह कण मात्र स्थानसे जागृत होकर विशाल रूपमें प्रकट हो जाती है और सबको भस्म कर देती है । पुनः वह अदृश्य-विलीन हो जाती है और पुनः कण मात्रसे प्रकट होकर विराट् रूप धारण कर लेती है । वही अग्नि प्रकट होते ही अन्तरिक्षस्थ वायुमें व्याप्त होकर उसको गतिमय बना देती है और वायुकी भी अपनी तपनसे व्याप्त करके उसको विशाल बना देती है । वही अग्नि सूर्य रश्मियोंमें भी अपने सूक्ष्म अंशको स्थापित करके द्युलोकके केन्द्र-सूर्यको प्राप्त होकर पुनः वहांसे सर्वत्र फैल जाती है । अग्निका वामनत्व विराट्में परिणत होनेकी क्रिया ही यज्ञ है ।

नये जीवनमें पिछले जीवनोंका अनुभव

(लेखिका— श्री माताजी, श्री अरविन्दाश्रम, पांडिचेरी– २)

क्या नए जीवनमें विगत जीवनोंकी प्राणिक और मानसिक सत्ताएं विकसित होती रहती हैं, चाहे नया भी हो ? पिछले जीवनोंके अनुभव हमारे लिये किस प्रकार उपयोगी होते हैं ? क्या नए सिरेसे सभी अनुभवोंमेंसे गुजरना आवश्यक होता है ?

यह व्यक्तियों पर निर्भर करता है।

मन या प्राण एक जीवनसे दूसरे जीवनमें विकसित नहीं होते। कुछ असाधारण व्यक्तियोंके उदाहरणों और विकास की बहुत ऊंची अवस्थाको छोडकर साधारणतया विकास केवल आंतरिक सत्ताका ही होता है। वस्तुतः यह होता है कि अंतरात्मा बारी बारीसे विश्राम और कर्मकी अवस्थामें जाती है; भौतिक शरीरमें उसका जीवन क्रियाशील होता है, जब कि वह शरीर प्राण और मनके समस्त अनुभवोंके द्वारा उन्नति करती है। इसके बाद वह स्वभावतया ही विश्रामकी अवस्थामें चली जाती है जब कि वह उन्हें आत्मसात् करती है और सक्रिय जीवनमें किये गये विकासके परिणामोंका सार निकालती है। जब यह अवस्था समाप्त हो जाती है और पृथ्वी पर सक्रिय जीवनमें प्राप्त विकास भी आत्मसात् हो जाता है तो वह दुबारा एक नए शरीरमें अपने पूर्व विकासके परिणाम सहित प्रवेश करती है। एक उन्नत अवस्थामें, वह एक ऐसा वातावरण, शरीर या जीवन चुनती है जिसमें वह अपनी किसी न किसी अनुभूतिको पूरा करना चाहती है। बहुत ही अधिक विकसित व्यक्तियोंमें अंतरात्मा शरीर छोडनेसे पहले उस जीवनके बारेमें निश्चय कर सकती है जिसे वह अगले जन्ममें ग्रहण करना चाहती है।

जब वह एक संपूर्णतया संगठित और चेतन सत्ता बन जाती है तो वह नए शरीरकी रचनाकी ओर ध्यान देती है। साधारणतया ऐसा होता है कि वह एक आंतरिक प्रभावके द्वारा उन तत्त्वों और उपादानोंको चुनती है जो उसके शरीर का निर्माण करेंगे जिससे कि शरीर अपने नए अस्तित्वकी आवश्यकताओंके अनुसार अपने आपको ढाल सके। किंतु ऐसा एक काफी उन्नततर स्तर पर ही होता है। पीछे जब कि सत्ताका निर्माण पूरा हो जाता है और वह सेवा, सामूहिक सहायता और भागवत कार्यमें भाग लेनेके विचारके साथ पृथ्वी पर लौटती है तो उसे निर्मित होते हुए शरीरमें पूर्व जीवनोंके कुछ मानसिक और प्राणिक तत्व लानेमें सफलता मिलती है, वे तत्व क्योंकि सुव्यवस्थित हो चुके होते हैं और आंतरात्मिक शक्तियोंसे अनुप्राणित हो चुके होते हैं, इन्हें सुरक्षित रखा जा सकता है और इस कारण वे सामान्य विकासमें भी भाग ले सकते हैं। किंतु यह एक बहुत अधिक ऊंची अवस्था है।

जब अंतरात्मा पूर्णतया विकसित और संपूर्ण रूपसे चेतन हो जाती है, जब वह भागवत इच्छाका एक चेतन यंत्र बन जाती है, तब वह मन और प्राणको इस प्रकार व्यवस्थित करती है कि ये भी सामान्य समस्वरतामें भाग लेने लगते हैं और इस प्रकार सुरक्षित रह सकते हैं उच्च विकासकी अवस्थामें कुछ भाग कमसे कम मानसिक और प्राणिक सत्ता के कुछ भाग शरीरके विघटनके बाद भी सुरक्षित रह सकते हैं। उदाहरणार्थ, यदि मानव क्रियाके कुछ भाग अर्थात् मानसिक और प्राणिक भाग विशेष रूपमें विकसित हो चुके हों, तो ये अपने स्वरूपमें भी सुरक्षित रहते हैं, उस क्रियाके स्वरूपमें जो पूर्णतया व्यवस्थित हो चुकी है। इस प्रकार, विशेषरूपसे अत्यधिक बौद्धिक लोगोंके लिये जिनका मस्तिष्क विशेष विकसित हो चुका है, उनकी सत्ताका मनोमय भाग इस रचनाको बनाये रखता है और अपने आपको एक व्यवस्थित मस्तिष्कके रूपमें सुरक्षित रखता है। इस मस्तिष्क का अपना जीवन होता है और वह तबतक सुरक्षित रह सकता है जबतक कि वह अपनी समस्त प्राप्तियोंके साथ भावी जीवनमें भाग लेना आरंभ नहीं कर देता।

कलाकारोंमें, उदाहरणार्थ कुछ गायकोंमें, जो एक विशेष रूपमें चेतन ढंगसे अपने हाथोंका प्रयोग करते थे, प्राणिक और मानसिक तत्त्व हाथोंके स्वरूपमें सुरक्षित रहता है और वे हाथ पूर्णतया चेतन रहते हैं, वे जीवित सत्ताओंके शरीरोंका भी प्रयोग कर सकते हैं, यदि उनके साथ इनकी विशेष समानता हो। ऐसी और भी बातें हैं।

अन्यथा साधारण व्यक्तियोंमें तो, जिनका आंतरात्मिक स्वरूप पूर्णतया विकसित और व्यवस्थित नहीं होता उस समय जब कि अंतरात्मा शरीरको छोडती है प्राणिक और मानसिक स्वरूप थोडी देर के लिये बने रह सकते हैं, विशेषतया जब मृत्यु शांत और एकाग्र अवस्थामें हुई हो। किन्तु यदि मनुष्य अचानक या किसी भावावेगकी अवस्थामें और अनेक आसक्तियोंके बीच मृत्युको प्राप्त हो तो विभिन्न भाग अपने स्थानसे च्युत हो जाते हैं और तब वे थोडे बहुत लंबे समयतक अपने क्षेत्रमें ही अपना जीवन बिताते हैं और फिर समाप्त हो जाते हैं।

शरीरमें अंतरात्माकी उपस्थिति ही सदा संगठन और रूपांतरका केंद्र होती है। अतएव यह मानना भारी भूल है कि विकास लगातार होता रहता है या जैसी कि कुछ लोग कल्पना करते हैं, या दो जीवनोंके बीचके संक्रमण–कालमें अधिक पूर्ण और द्रुत रूपमें संपन्न होता है। सामान्यतया यहां विकास होता ही नहीं, क्यों कि अंतरात्मा तबविश्रामकी अवस्थामें चली जाती है और दूसरे भाग अपने अपने क्षेत्रमें कुछ क्षण ही जीवन बिताकर विघटित हो जाते हैं।

पार्थिवजीवन ही विकासका क्षेत्र है। यहां, पृथ्वी पर पार्थिव अस्तित्वके कालमें ही विकास संभव है। अंतरात्मा स्वयं ही, अपने विकास और अपनी उन्नतिको संगठित करके इस प्रगतिको एक जीवनसे दूसरे जीवनमें ले जाती है।

वैदिक विश्वसंस्कृति एवं पर्वविज्ञान

(लेखक– श्री रणछोड़दास 'उद्धव' संचालक अ. भा. श्री रविधाम, केन्द्र महिदपुर [म. प्र.])

अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य
रायस्पोषस्य दद्तितारः स्याम ।
सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा
स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः ॥
(यजुर्वेद ७।१४)

अबाध होकर बहनेवाले तेरे सुवीर्य औ ऐश्वर्य ।
एवं उससे प्राप्त पुष्टिके दाता हम हों हे प्रभुवर्य !
वह है पहली वैदिक संस्कृति, विश्ववरण करनेके योग्य ।
उसका उद्गम सोम, वरुण औ सूर्य–अग्नि हैं स्वीकृति योग्य ॥

इस मन्त्रको हमने सत्साहित्य सुमनमालाके २० वें सुमन 'वेदसुधा' की भूमिकामें दिया है एवं भारतीय संस्कृतिका स्वरूप– 'धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षको स्पष्ट किया है और एक श्लोकमें संस्कृतिके चार लक्षण भी लिखे हैं। अन्य विद्वानोंने भी भारतीय संस्कृतिके विषयमें बहुत लिखा है, किन्तु हमारे वेदानुकूल मन्तव्योंके अनुसार भारतीय संस्कृतिका भाष्य स्व. वेदविज्ञानाचार्य पं. मोतीलालजी शर्माके 'संस्कृति और सभ्यता' में मिला। वह हमें बहुत पसंद आया, किन्तु उनका लेखन पाठकोंको बहुत कठिन ज्ञात होता है। यह पाठकोंका अभिप्राय ग्रन्थलेखकने भी उद्धृत किया है और हमसे भी कई सज्जनोंने यही कहा है। गीता-विज्ञान–भाष्य–भूमिकाके निवेदनमें पं. मोतीलालजीने मित्रोंके सुझावोंके उत्तरमें लिखा है– 'क्या समाजका कोई कर्तव्य नहीं है ? क्या एक कृषक खेतीके साथ–साथ पीसकर, छानकर, रोटी बनाकर अपने हाथों आपके मुँहमें डाल सकेगा ? असम्भव ! आप भोक्ता हैं, हम कृषक हैं। हमने अन्न उत्पन्न कर दिया, अब उसे परिष्कृत बनाकर भोग्य–योग्य बनाना आपका कर्तव्य है।' इत्यादि।

लेखकका उक्त प्रकारसे लिखना यथार्थ है। तदनुसार हमने वैदिक संस्कृतिका परिचय देनेके लिए पं. मोतीलालजी शर्माके उक्त विशाल ग्रंथका सरल सारांश 'वैदिक विश्वसंस्कृति एवं पर्वविज्ञान' के रूपसे भोग्य–योग्य बनाया है। इसमें हमारे निश्चित किये हुए 'संस्कृतिके चार लक्षण' वाले निम्न लिखित श्लोकका भी समावेश है—

धर्मार्थकाममोक्षार्था, ज्ञानोपासनकर्मदा ।
ज्ञानविज्ञानसहिता, ईशसर्वा हि संस्कृतिः ॥

इसमें क्रमशः– चार शब्दोंमें, तीन शब्दोंमें, दो शब्दोंमें एवं एक शब्दमें संस्कृतिके स्वरूपका सारांश आया है, पाठक इसका मनन 'वैदिक विश्वसंस्कृति एवं पर्वविज्ञान' द्वारा करें।

भारतीय स्वराज्य प्राप्त होनेसे सर्वत्र संस्कृति, सांस्कृतिक आयोजन, समानता आदिकी घोषणाओंका प्रवाह चल पड़ा है, यह सत्तातंत्रका बल है। सत्तातंत्र जिसे 'संस्कृति' मान लेता है, उसे प्रजातन्त्र भी अपना आदर्श मानकर चल पड़ता है। तीन हजार वर्षोंसे इसी प्रकार प्रवाह चल रहा है किन्तु इसे हम 'भारतीय संस्कृति' नहीं कह सकते। संस्कृतिके आश्रयसे सत्तातन्त्र जीवित रहा करते हैं, जबकि सत्ताके आश्रयसे 'संस्कृति' 'संस्कृति' न रहकर केवल भौतिक सभ्यता ही बनी रह जाती है। विद्वज्जन भी प्राचीन खण्डहर और भूगर्भस्थ प्राचीन टूटी–फूटी वस्तुओंको ही ऐतिहासिकता तथा भौगोलिकताके प्रमुख मापदण्ड बना लेते हैं एवं इनको ही ये 'संस्कृति–परिचय– चिन्ह' कहा करते हैं। इन पुरातत्वोंके माध्यमसे ही उत्पन्न होनेवालीका नाम 'सामासिक–संस्कृति' रख लिया जाता है। इस सामासिकतामें अनेक भावोंका समन्वय होता है किन्तु वे अनेक भाव 'संस्कृति' के रूप कदापि नहीं हैं। ये तो सत्तासे सम्बन्धित सभ्यताके ही भाव हैं। युगधर्मकी तात्कालिक अनेक सभ्यताओंके एकत्र समन्वयसे 'सामासिक–सभ्यता' का जन्म हुआ करता है, संस्कृतिका नहीं। क्योंकि 'संस्कृति' में अनेकत्व है ही नहीं। सम्पूर्ण विश्वकी 'संस्कृति' एक है।

उस अखण्डा अभिन्ना संस्कृतिके गर्भमें ही अनेक भाववाली सभ्यताएँ उपजती और लीन होती रहती है । जो सत्ता प्रबल होती है, वह अपनी सभ्यतामें अन्य निर्बल सत्तावाली सभ्यताको निगलकर सामासिक-सभ्यताका रूप धारण कर लेती है । अतएव संस्कृति-प्रेमी सज्जनोंकी सेवामें संस्कृतिका सच्चा स्वरूप दिखाते हैं ।

श्रीयुत पं. मोतीलालजीने सर्वश्री रामधारी दिनकर महोदय द्वारा लिखित ' संस्कृतिके चार अध्याय ' की समालोचनामें लिखा है कि- श्री दिनकर महोदयका सम्पूर्ण प्रयास उस ' सामासिक-संस्कृति ' का ही यशोगान कर रहा है । जिसके मूलसूत्र पश्चिमी विद्वानोंकी प्रज्ञासे ही व्यवस्थित हुए हैं । ' संस्कृतिके चार अध्याय ' में श्रीदिनकरजी परिशिष्ट ' क ' पृ. ६५१ के आरम्भमें लिखते हैं- ' संस्कृति एक ऐसी चीज है जिसे लक्षणोंसे तो हम जान सकते हैं, किन्तु उसकी परिभाषा नहीं दे सकते । कुछ अंशोंमें वह सभ्यतासे भिन्न गुण है । अंग्रेजीमें कहावत है कि सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है और संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है । मोटर, महल, सडक, हवाई जहाज, पोशाक और अच्छा भोजन ये तथा इनके समान सारी अन्य स्थूल वस्तुएँ संस्कृति नहीं, सभ्यताके सामान हैं । मगर पोशाक पहनने और भोजन करनेमें जो कला है वह संस्कृतिकी चीज है । ' इत्यादि ।

' अंग्रेजोंने जो कुछ कहा है ' वह तो ठीक ही कहा होगा अपनी मनःशरीरानुगता लोकमान्यताओंके अनुपातसे; किन्तु आपके देशके किसी भी मनीषीने संस्कृति और सभ्यताके सम्बन्धमें आजतक कुछ नहीं कहा ? मोटर, हवाई जहाज आदि सभ्यताके सामानोंमेंसे अपना स्वरूप व्यवस्थित करनेवाली वह ' सभ्यता ' क्या है ? एवं पोशाक तथा भोजन करनेकी उस ' कला ' का स्वरूपपरिचय क्या है ? जिसे श्रीदिनकरजी ' संस्कृतिकी चीज ' कह रहे हैं, इत्यादि सभी प्रश्न सर्वथा प्रश्नरूपसे ही इसलिए सुरक्षित रह जाते हैं कि इन प्रश्नोंका आपके प्रमाणभूत ' अंग्रेजोंने कहा है ' इस आप्त वाक्य-प्रमाणकी अभिव्यक्तिके अनन्तर लेखक महाभागके सभी प्रयास परिसमाप्त हो जाते हैं ।

भारतीय विद्वानोंने बुद्धयुगसे आरम्भ कर वर्तमान युग तक इस दिशामें कोई प्रयास नहीं किया । ' संस्कृति ' का महान् कोश ' वेदशास्त्र ' इनके लिए अपौरुषेय अतएव पूजन-अर्चनकी ही सामग्री बना रहा, सांस्कृतिक आचारोंका महान् कोश ' स्मृतिशास्त्र ' इनके लिए निरपेक्ष ही प्रमाणित होता रहा एवं सांस्कृतिक-आयोजनोंका महान् कोश ' पुराणशास्त्र ' इनके लिए उपेक्षणीय ही बना रहा । अतएव हमें तो इन अभिनव विद्वानोंके प्रति कृतज्ञता ही अभिव्यक्त कर देनी चाहिए, जिनकी प्रेरणासे ही आज हम संस्कृति और सभ्यता शब्दोंके चिरन्तन इतिहासके अन्वेषणमें प्रवृत्त हो रहे हैं । सर्वश्री दिनकर महाभाग जैसे अभिनव विद्वानोंके तथाविध सांस्कृतिक- निबन्धोंके प्रति भी हमें कृतज्ञताञ्जलि ही समर्पित कर देनी चाहिए, जिनने ' संस्कृतिके चार अध्याय ' जैसे अपने महत्वपूर्ण निबन्धमें ' आदमीकी नस्ल पहिचाननेवाले सुविकसित नवीनशास्त्रोंके बल पर औष्ट्रिक या आग्नेय जातियोंके आगमन, द्रविड जातिके आगमन, आर्योंके आगमन, आर्योंके आदिस्थान, ऋग्वेद-रचनाकाल ' आदि आदि अपनी महत्वपूर्ण खोजोंके माध्यमसे तीन सहस्र वर्षोंके ' सांस्कृतिक अधःपतन ' का बडा ही मार्मिक विश्लेषण किया है । विभिन्न मत-वादात्मक जिस सम्प्रदायवादने तीन सहस्र वर्षोंसे भारतराष्ट्रकी मूल संस्कृति विश्ववारा व्यापक संस्कृति तथा उसके आधार पर प्रतिष्ठिता आर्षसभ्यताके भौतिक चिन्तन स्वरूपको उत्तरोत्तर पराजित ही किया है । उस सांस्कृतिक अधःपतनका ही आपके इन चार अध्यायोंमें विस्तारसे निरूपण हुआ है, जिस निरूपणके प्रमुख आधारस्तम्भ पाश्चिमात्य विद्वानोंके सुविकसित अभिनवशास्त्र तथा भाषाविज्ञानादि शास्त्र ही बने हुए हैं । आपने आग्रह किया है कि आपकी इस पुस्तकको अवश्य ही भारतीय जनता पढे । आप भूमिकामें लिखते हैं—

" मेरा अपना क्षेत्र तो काव्य ही है । एवं मेरे साहित्यिक जीवनका यश और अपयश मेरे काव्य पर निर्भर करता है । किन्तु जिस परिश्रमसे मैंने यह पुस्तक लिखी है, उस परिश्रमसे मैंने और कुछ नहीं लिखा । मैंने पाठकोंसे कभी यह अनुरोध नहीं किया कि वे मेरी किसी भी कृतिको पढें । किन्तु इस ग्रन्थको देख जानेका अनुरोध मैं सबसे करता हूँ । "

भारतराष्ट्रकी सांस्कृतिक-निष्ठाओंके शैथिल्यमें पश्चिमके विद्वानोंके नवीन ग्रन्थ उतने कारण नहीं हैं, जितने कारण उनके ये अनुवाद ग्रन्थ बने हुए हैं । अपने विशुद्ध राजनैतिक स्वार्थके या साम्राज्यलिप्साके संरक्षणके लिए जिन

चाणाक्षचतुर पश्चिमके विद्वानोंने भारतीय आर्यजातिको भारत-राष्ट्रके अतिथि प्रमाणित कर दिया था, उसी दृष्टिकोणका अनुकरण करनेवाले इन चार अध्यायोंको आप आदिसे अन्त तक पढ जाइए 'संस्कृति–सभ्यता' शब्दोंके आचारात्मक अर्थका भी आप बोध प्राप्त कर सकेंगे इस महान् स्वाध्यायसे ? हाँ ! वह सब कुछ विदित हो जायगा आपको, जो इंग्लिश न जाननेके कारण आजतक आपके लिए केवल कर्णाकर्णि-परम्परा ही बना हुआ था। पश्चिमी विद्वानोंने भारतीय संस्कृति, सांस्कृतिक–आचार तथा सांस्कृतिक आयोजनोंके सम्बन्धमें अपने राजनैतिक स्वार्थकी संरक्षणलिप्सासे धारणाएँ व्यक्त की हैं, उनका बोध आप अवश्य ही प्राप्त कर लेंगे इन चारों अध्यायोंसे, जिसे हम उद्बोधनका ही कारण मानेंगे। एवं इस उद्बोधनको दृष्टिसे हम भी श्री दिनकरजीके ग्रन्थके अवलोकनके आग्रहसे उनसे पीछे न रहेंगे।

जिन चिरन्तन सत्य तथ्योंके आधार पर 'संस्कृति, सभ्यता, साहित्य, आदर्श, आचार' आदि–आदि अर्थ-गम्भीर सांस्कृतिक शब्द प्रकट हुए हैं, उन शब्दोंके चिरन्तन सत्यतथ्यात्मक वाच्यार्थोंका चिरन्तन इतिहास ही जनतन्त्रको वैसा उद्बोधन प्रदान कर देगा, जिस उद्बोधनके बलपर स्वयं ही समर्थ बन जायगा एवं स्वतन्त्रतापूर्वक यह अपनी जीवनपद्धति व्यवस्थित कर लेगा। इसी पावन उद्देश्यसे श्रद्धाशील भारतीय जनतन्त्रके लिए प्रस्तुत निबंधमें–

सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा। (यजुर्वेद. ७।१४)

'सबके वरण करने योग्य वह सबसे पहली वैदिक संस्कृति है।' यह कहता है।

वैदिक विश्वसंस्कृति और मानवता

मानव अपने १ आत्मा, २ बुद्धि, ३ मन एवं ४ शरीर, इन चारों ही मानवीय तन्त्रोंको क्रमशः– १ शान्ति, २ तृप्ति, ३ तुष्टि एवं ४ पुष्टि प्रदान करना चाहता है। अतएव आत्म–बुद्धिसम्मत तत्त्वचिंतन तथा तत्त्वका आचरणरूप महान् उत्तरदायित्वोंकी समाप्तिके अनन्तर इसे अपने मनः–शरीर सम्बन्धी मानस–विनोद तथा शारीरिक भोगादिकी अपेक्षा रहती है। गायन, वादन, नर्त्तन, खान–पान, कविता, नाटक, चित्र आदि–आदि इसी अपेक्षाके पूरक माने गये हैं। इन मानस और शारीरिक विनोदोंका प्रकृति चन्द्रके प्राणरूप गन्धर्व अप्सराप्राणोंसे सम्बन्ध माना गया है। जैसा कि–

काले गन्धर्वाप्सरसः प्रतिष्ठिताः।
(अथर्व संहिता १९।५४।४)

इत्यादिसे प्रमाणित है किन्तु 'काले एव' अर्थात् इन मानसिक और शारीरिक विनोदभावोंके आयोजनोंके लिए समयविशेष ही निर्धारित माना गया है, जिसे भारतीय ऋषिप्रज्ञाने दो दाम्पत्य–जीवनसे ही मर्यादित किया है। आत्मा और बुद्धि, ये दोनों मानवके 'दिव्यभाव' हैं एवं मन तथा शरीर, ये दोनों पशुभाव हैं। पशुभावोंका अनुगमन किसी अन्य–मर्यादासे मर्यादित है, तो दिव्यभावोंका अनुगमन अन्य–मर्यादासे मर्यादित है।

आत्मा और सत्त्वबुद्धि, इन दोनों सुसूक्ष्म तत्वोंसे युक्त अप्राकृत अतएव दिशा, देश और कालसे अतीत सनातन आत्मदेवके भावका ही नाम 'संस्कृति' है अतएव आत्मदेवके भावानुसार आचारोंको ही 'सांस्कृतिक–आचार' कहा जायगा एवं आत्मदेवके भावसे युक्त आयोजनोंको ही 'सांस्कृतिक–आयोजन' माना जायगा।

मानवको कब, किस अवस्थामें मानसिक गायन, नर्तनादि आयोजनोंका अधिकार मिलता है ? इत्यादि प्रश्नोंका मार्मिक समाधान जो स्वयं श्रुतिशास्त्रने किया है, उसे कदापि नहीं भूलना चाहिए। समाधानका सम्बन्ध उस पार्थिव–सृष्टिसे है, जिसका 'अर्णव' नामक रोदसी–समुद्रके गर्भमें अप, फेन, मृत्, सिकता, शर्करा, अश्मा, अय और हिरण्य इन आठ चितियोंसे स्वरूप निर्माण हुआ है। अप्, तेज एवं वायु (पानी, आग और हवा) इन तीनों भूतोंके अन्तर्याम– सम्बन्धात्मक सम्मिश्रणसे, यागात्मक-यजनसे अर्णवसमुद्रका पानी सबसे पहले 'फेन' (झाग) रूपमें परिणत होता है। इसका दूसरा घनरूप 'मृत्' (चिकनी मिट्टी) है, तीसरा 'सिकता' (भुरभुरी मिट्टी) है, चौथा 'शर्करा' (बालुमिट्टी) है, पाँचवा 'अश्मा' (पत्थर) है, छठा 'अय' (कच्चा लोहा) है, सातवाँ 'हिरण्य' (सुवर्ण, चाँदी, तांबा, सीसा आदि धातुमात्र) है और आठवाँ प्रारम्भिक घनभाग वह 'अप्' है जिसे संकेत भाषामें—

'आपो वै पुष्करपर्णम्' के अनुसार पुष्करपर्ण (कमलका पत्ता) कहा गया है। यही भूपिण्डका मूल जन्मदाता है। इसीलिए भूमिके केन्द्रमें रहनेवाले प्रजापति 'पद्मभू'

नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। अतएव पुराणशास्त्रने भूगोलविद्याका 'पाद्मभुवनकोश' रूपसे ही निरूपण किया है।

अब पृथ्वीने इन आठों पर्वोंका स्वरूप-संपादन कर लिया तब वह 'गा उठी और नाच उठी'। अपने परिभ्रमणके साथ क्रान्तिवृत्तके आधार पर सूर्यके चारों ओर भूपिण्डकी परिक्रमा लगाते रहना ही इस पृथ्वीका नर्तन है। एवं अपने आठ अवयवोंसे सम्पूर्णस्वरूपको अभिव्यक्त करनेके अनन्तर औषधि, वनस्पति, लता, गुल्म, पुष्प, फल और मंजरी आदि असंख्य मुद्राओंसे सुविकसित हो पडना ही पृथ्वीका गायन है। इस गायनसे ही तो पृथ्वीका नाम 'गायत्री' हुआ। कब, किस अवस्थामें पृथिवीने नाचना-गाना आरम्भ किया? एवं किस पद्धतिसे नाच गा रही है पृथिवी? इन दोनों प्रश्नके उत्तर इस सृष्टि-प्रक्रियासे मिल जाते हैं। जबतक पृथिवीका अपना स्वरूप पूर्ण नहीं हुआ, जबतक पृथिवी न तो गा सकी और न नाच ही सकी।। जब पृथिवी 'अभूत्' रूपसे 'भूमि' रूपमें परिणत हो गई; तब अपने इस सर्वाङ्गीण सुसमृद्ध- सुविकसितरूपके अनन्तर ही इसका गायन-नर्तन आरम्भ हुआ। श्रुतिके निम्न लिखित अक्षरोंको अवधानपूर्वक लक्ष्य बनानेका अनुग्रह कीजिए एवं उसके आधार पर स्वयं ही यह निर्णय कीजिए कि आपके राष्ट्रको नाच-गानरूप विनोदोंका किस अवस्थामें, कब किस पद्धतिसे अनुगमन करना चाहिए।

सेयं पृथिवी सर्वाप एवानुव्यैः। तदिदमेकमेव रूपं समदृश्यत- (१) 'आप' एव। सोऽकामयत प्रजापतिः- 'भूय एव स्यात्, प्रजायेय' इति। सोऽश्राम्यत्, स तपोऽतप्यत। स श्रान्तस्तेपानः (२) 'फेन' मसृजत। सोऽवेत्- अन्यद्वा एतद् रूपम्। भूयो वै भवति। श्राम्याण्येवेति। स श्रान्तस्तेपानः (३) 'मृदं' (४) 'सिकतं' (५) 'शर्करां' (६) 'अश्मानं' (७) 'अयः' (८) हिरण्यं' ओषधि-वनस्पतीनसृजत। तेनेमां पृथिवीं प्राच्छादयत्। अभूद्वा इयं प्रतिष्ठा इयं प्रतिष्ठा इति तत्- 'भूमि' रभवत्। तामप्रथयत् सा पृथिव्यभवत्। सेयं पृथिवी सर्वा कृत्स्ना मन्यमाना 'अगायत्' तस्मादियं पृथिवी गायत्री। अथोऽआहुः-अग्निरेवास्यै पृष्ठे सर्वः कृत्स्नो मन्यमानः- 'अगायत्'। यदगायत्, तस्माद्-ग्निर्गायत्रः। (शतपथ ब्राह्मण)

मानवने क्या समझा उक्त श्रौत-सन्दर्भसे? इस प्रश्नका दिग्देशकालात्मिका सीमित बुद्धि पर अनुग्रह कर स्वयं श्रुति ही इस प्रकार दे रही है कि- "जो मानव अपने मानवीय स्वरूपको सर्वात्मना सुसम्पन्न, सुसमृद्ध कर लेता है, वही गायनादि मनोविनोदात्मक आयोजनोंका अनुगामी बनता है—"

तस्माद् हैतत्-यः सर्वः कृत्स्नो
मन्यते गायति वैव, गीते वा रमते।

(शतपथ ब्रा. ६।१।१।१२-१५)

क्या तात्पर्य निकाला इस श्रौत-उद्बोधन सूत्रका? उत्तर सुनिए- मानव जबतक अपने आत्मा, बुद्धि, मन एवं शरीर इन चारों मानवीय पर्वोंको स्वस्थ तथा प्रकृतिस्थ नहीं बना लेता, जबतक इसमें मनोविनोदात्मिका प्रवृत्तियाँ जागरूक ही नहीं होतीं। यदि अपने मानवीयस्वरूपकी अपूर्णतामें भी ऐसे मनोविनोद जागरूक बन जाते हैं, तो फिर वह 'मानव' नहीं है। ऐसे भी प्राणी विद्यमान हैं प्रकृतिकी गोदमें, जो अथसे इतितक अपूर्ण, अविकसित, असमृद्ध एवं आर्त ही बने रहते हैं। किन्तु इस अपूर्ण अवस्थामें ही वे प्राकृत पशु, पक्षी, कृमि, कीट आदि प्राणी नाचते-गाते रहते हैं। चहकने-कूकते रहते हैं। जिनके प्राकृत-जीवनका इस नाच-गान, अशन-पान, शयन-गमन, हास-परिहास एवं आमोद-प्रमोद आदि मानसिक और शारीरिक व्यासंगोंके सिवा कोई लक्ष्य ही नहीं है।

गायन, वादन, नर्तन, प्रकृति प्रेम, उल्लास, हास, परिहास आमोद प्रमोद आदि-आदि मन और शरीरके धर्मोंको इस राष्ट्रकी प्रज्ञाने कभी 'पुरुषार्थ' नहीं माना। किन्तु इसकी दृष्टिमें तो आत्मा और बुद्धिसे युक्ता, उत्तरदायित्वपूर्णा कर्तव्यनिष्ठा ही मानवजीवनका प्रधान 'पुरुषार्थ' बना रहा। इस भारतराष्ट्रकी चिरन्तन प्रज्ञाने सृष्टिके कठिन तत्त्वोंके समन्वय से किसी युगमें सम्पर्ण विश्वको चमत्कृत कर जगद्गुरुत्वका स्थान ग्रहण करते हुए मुक्तकण्ठसे उदात्त घोषणा कर दी थी कि- 'इस देशमें उत्पन्न ज्ञान-विज्ञाननिष्ठ तत्वज्ञ तथा आचारनिष्ठ ब्राह्मणसे संसार भरके मनुष्य अपने-अपने देश-कालके कर्तव्योंकी शिक्षा ग्रहण करते रहें।'

'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥'
(मनु.)

भारतराष्ट्रको ऋषिप्रज्ञाने प्रकृतिके साथ कभी द्रोह भी नहीं किया एवं न प्राकृत विश्वके सूर्यके सत्यभावको, पृथ्वीके शिवभावको तथा चन्द्रके सुन्दरभावको निरपेक्ष या उपेक्षणीय माना। किन्तु प्रकृतिके छोटेसे छोटे तथा बड़ेसे बड़े महिमाविवर्तोंके सम्मुख ऋषिप्रज्ञाने अपने आपको पूर्ण 'उपासक' के रूपसे ही समर्पित कर प्रकृतिके वरदानसे उपलब्ध होनेवाले उस समस्त विश्व वैभवसे अपने भारतराष्ट्रको पूर्ण समलङ्कृत ही कर दिया था, जिस प्राकृत ऐश्वर्यकी श्री– लक्ष्मी, ऋद्धि, समृद्धि एवं पुष्टि आदिकी आजके ये प्रकृतिप्रेमी स्वप्नमें भी कल्पना नहीं कर सकते। प्रकृतिका प्रेम भारतराष्ट्रकी समृद्धिका कभी भी आधार नहीं रहा, किन्तु 'प्रकृतिपूजन' ही भारत वैभवकी मूलप्रतिष्ठा बना। नाचते हुए और केका वाणीके द्वारा गाते हुए 'मयूर' को देखकर ऋषिका मनमयूर नाचने गाने नहीं लग पडा, किन्तु आपोमय पारमेष्ठ्य (परमेष्ठीके) सरस्वान् समुद्रकी अधिष्ठात्री माता सरस्वतीके सांकेतिक वाहनके रूपमें ऋषिज्ञानने इस मयूरदर्शनने सर्वप्रथम मयूरासना माता सरस्वतीका ही स्मरण किया एवं उसीके माध्यमसे मयूरके इस पारमेष्ठ्य सत्य–शिव–सुन्दर प्राकृतभावके प्रति अपने श्रद्धासुमन समर्पित किए।

सत्य, शिव और सुन्दर इन तीनों सूर्य, पृथ्वी और चन्द्रके महिमाभावोंका क्रमशः अपने प्राकृत सूर्यकी बुद्धि, पृथिवीके शरीर तथा चन्द्रके मन, इन तीनोंसे पूजन–आराधन करते हुए, इस प्रकृति–पूजनके माध्यमसे ही, इस प्राकृत उपासनाके अनुग्रहसे ही प्रकृति–अतीत पुरुषब्रह्मका भी अनुग्रह प्राप्त कर लिया एवं उसके अनुग्रहसे प्राकृत आसक्तियोंसे अपनी बुद्धि, मन और शरीरको निराले रखते हुए, प्रकृतिके सम्पूर्ण वैभवोंसे भी अपने आपको समन्वित कर लिया। हम समझते हैं। प्रकृति (विश्व) और पुरुष (विश्वात्मा–विश्वेश्वर) का ऐसा लौकिक–अलौकिक और अभ्युदय एवं निःश्रेयसात्मक समन्वय भारतीय ऋषि प्रज्ञाके सिवा आज तक विश्वकी किसी भी अन्य प्रज्ञाके द्वारा समन्वय तो क्या कल्पनाका भी विषय नहीं बन सका है। अतएव पाश्चात्य महामानवोंने मुक्तकंठसे यह स्वीकार कर लेनेमें कोई आपत्ति नहीं की है कि– 'भारतवर्षके औपनिषद्ज्ञानसे ही विश्वका संघर्ष शान्त हो सकता है।'

ज्ञान बिना श्रद्धाके प्राप्त नहीं होता, अतः कहा है—

'पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत्' अर्थात् 'अपने पाण्डित्यके, समझके, विद्वत्ताके अतिमानको छोड़कर जिज्ञासु मानवको सर्वथा एक अबोध निरीह बालककी भांति ही बना लेना चाहिये।' तभी मानवमें सहजरूपसे वह प्रणतभाव अभिव्यक्त होता है, जिसके बिना 'श्रद्धा' का उदय असम्भव है एवं श्रद्धाको मध्यस्थ बनाये बिना मानव वास्तविक 'ज्ञान' के साथ अपने भूतात्माका सम्बन्ध करानेमें सर्वथा असमर्थ है। अतएव गीतामें कहा है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥
श्रद्धावान्, जितेन्द्रिय, तत्पर नरको वह मिलता है ज्ञान।
ज्ञान प्राप्त कर फिर तुरन्त वह हो जाता है शान्ति–निधान ॥

परमात्मारूप तथा सूर्यके केन्द्रमें रहनेवाला अग्नितत्व ही पुराणभाषामें 'मनु' नामसे प्रसिद्ध हुआ है। महिलामंडलमें आकर वही 'अग्नि' कहलाने लगता है। इन्द्रप्राणमय होनेसे यही 'इन्द्र' नामसे प्रसिद्ध है। प्राजापत्यप्राणके सम्बन्धसे 'प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः' (प्रश्नोपनिषद् १।८) 'प्रजाओंका प्राण सूर्य उदित होता है,' 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' (१।११५।१) 'सूर्य जड और चेतनका आत्मा है।' इत्यादि श्रौत सिद्धान्तोंके अनुसार संपूर्ण प्रजाका उपादान कारण होनेसे वही हिरण्मय मनु 'प्रजापति' कहलाने लगता है। सौरमण्डलस्थित परोरजाप्राणमूर्ति षोडशीपुरुष नामसे प्रसिद्ध अमृतात्माके सम्बन्धसे वही 'शाश्वतब्रह्म' नामसे प्रसिद्ध हो जाता है। इस प्रकार अवस्थाभेदसे सूर्यके तत्वने अग्नि, मनु, इन्द्र, प्रजापति, प्राण और शाश्वतब्रह्म आदि अनेक नाम धारण किये हैं। अतः कहा है—

एतमेके वदन्त्यग्निं, मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्मशाश्वतम् ॥
(मनु० १२।१२३)

मानवमात्र अपने इस केन्द्रीय मनुसे 'मानव' है, अर्थात् आत्मबुद्धिनिष्ठ सांस्कृतिक–पुरुष है और यही, मानव' शब्दका चिरंतन इतिहास है। अपने इसी सुसूक्ष्म आत्मभावसे सम्पूर्ण विश्वके मानव 'मानव' हैं, आर्य हैं। इस बीजात्मिका मानवीय आर्यताको लक्ष्य बनाकर ही भारतराष्ट्रके आर्ष मानवमहर्षिकी ओरसे 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' (ऋ० ९।६३।५) अर्थात् 'विश्वको आर्य करते हुए (गमन करते हैं)' जैसी महत्त्वपूर्ण उदात्त–घोषणा हुई है। आत्माको व्यक्त करनेवाली इस मानवतासे ही मानव मात्र बीजरूपसे सांस्कृतिक पुरुष हैं। [क्रमशः]

शिक्षाक्षेत्रमें परिवर्तन और उसकी आवश्यकता

(लेखक— श्री भगवानराव आर्य भोसीकर, आर्यनिवास कन्धार (नान्देड) महाराष्ट्र)

शिक्षाप्रणाली कैसी होनी चाहिये इस पर अनेक पुस्तकों, मासिकों, वृत्तपत्रों, अवधिपत्रोंमें विद्वानोंने लेख छापे हैं और जनताका और शासनका मन आकर्षित किया है। फिर भी इन सबका संक्षेपमें हेतु यही हो सकता है "शिक्षाप्रणाली ऐसी होनी चाहिये जिससे युवक युवतियां, राष्ट्र, समाज और परिवारके लिये उपयुक्त सिद्ध हो सकें।" आजका स्नातक युवक भी पूर्ण रूपसे इस सिद्धान्तको सन्तुष्ट नहीं कर सकता। शिक्षाप्रणालीमें क्या दोष है यह इस लेख द्वारा उद्धृत करनेकी आवश्यकता नहीं। इसका लेखा अनेक विद्वानों और शिक्षा शास्त्रियों द्वारा प्रकाशित किया हुआ है। इतना यहां लिखना काफी है कि आजका स्नातक अन्य बातोंसे तो दूर द्रव्योपार्जनमें भी पीछे ही है। राष्ट्रपर आपत्तिके समय धैर्यपूर्वक संग्राममें हिस्सा लेना, राष्ट्रीय संपत्तिमें अपनी पारिवारिक अर्थ सीमाको बढाते हुए वृद्धिका अंशदान देना, समाजकी नैतिकताको स्थिर रखना आदि बातें जो शिक्षाप्रणालीसे ही प्रादुर्भूत होनी चाहिये आज उसीका सर्वत्र अभाव दिखाई पडता है।

आजका स्नातक शारीरिक कष्ट नहीं कर सकता, उद्योगमें निजी बुद्धि काममें नहीं ला सकता, कृषिमें और व्यापारमें आगे नहीं बढ सकता, वह केवल निश्चित, निर्देशित चार दीवारोंमें बैठ साडेदशसे साडे पांच तक केवल पत्रव्यवहार और लेख, आलेख, दिये नमूनेमें संख्या प्रदर्शित करना आदि जैसे काम कर सकता है। क्या अन्यान्य क्षेत्रोंमें काम करनेवाला विज्ञानका स्नातक छाती पर हाथ रखकर कह सकता है कि विज्ञानमें जो उसने शिक्षा पाई उसका उसने पूरा उपयोग किया है और स्वयंकी बुद्धिसे उसमें अधिक वृद्धि की है। नोकरी पानेके लिये केवल 'प्रमाणपत्र' प्राप्त करना पडता है और इसीलिये पाठशालाओंमें मातापिताको भेजना पडता है अन्यथा बात सब आसान थी यही इसका उत्तर है। यदि बात यह है तो हमारा राष्ट्र कैसे अपनी राष्ट्रीय संपत्तिको बढा सकता है, वह बलवान् और शक्तिवान् बन सकता है, कैसे विश्वमें 'उन्नत राष्ट्र' गिना जा सकता है? आज शिक्षाप्रणालीमें आमूल चूल परिवर्तन लाकर मेकॉलेकी काली कुटिल नीतिका दम घोटना अत्यन्त आवश्यक है। अन्यथा हमारे भारतीय युवक कैसे हमारे राष्ट्र, समाज और परिवारके लिये उपयुक्त सिद्ध हो सकेंगे।

जैसे दोष शासन द्वारा संचालित और प्रमाणित 'स्कूलों' में हैं वैसे ही कुछ कम अधिक रूपसे गुरुकुलोंमें भी दिखाई देते हैं। गुरुकुलोंमें शिक्षित युवक निःसंशय नैतिकता और राष्ट्रभक्तिसे परिपूर्ण होता है फिर भी वह परिवार और राष्ट्रीय सम्पत्तिकी वृद्धिमें योगदान नहीं दे सकता। समाजकी नीति यद्यपि स्वस्थ बनेगी फिर भी अर्थोपार्जन, कला, न्याय, युद्ध, यन्त्र आदिमें पीछे रह जाता है। अतः एक ऐसी प्रभावी शिक्षाप्रणाली जिससे अनेक गुणोंका समाधान हो सके जो परिवार, समाज और राष्ट्रकी प्रगतिके लिये आवश्यक है की अत्यन्त आवश्यकता है।

मैं विदेशी शिक्षाशास्त्रियोंके नाम यहां नहीं गिनना चाहता जिन्होंने अपने देशके काल, परिस्थिति और समाजके मानसिक स्तरानुसार अपनी पद्धति बनाई और शिक्षाक्षेत्रमें क्रांति लाई। हमारे राष्ट्रमें एक ऐसी शिक्षाप्रणाली प्रचलित थी जो इस देशकी स्थिति और समाजके मानसिक स्तरानुसार प्रचलित की गई थी। इस देशमें विदेशी आकर पठन पाठन करते थे और अपने साथ भारतीय संस्कृतिकी दिव्य पूंजी साथ ले अपने देश बान्धवोंको आलोकित करते थे। इस राष्ट्रकी शिक्षा, पराक्रम और अर्थ सम्पत्तिसे सारा संसार प्रभावित और सामन्त बना हुआ था। पर जबसे नश्वरवाद क्षणिकवाद और शून्यवाद जैसे अधोगामीवाद अस्तित्वमें आये उन्होंने यहांके प्रखर सूर्यको मेघाच्छादित किया और यहांकी विद्या, यहांका अर्थ और पराक्रम सब लुप्त किया। और राष्ट्र परतन्त्र, परानुगामी, परापेक्षी बन गया। फिर भी

आज हम स्वतन्त्र हैं और तिमिरको हटा सकते हैं और स्वतन्त्रतापूर्वक पुनः संसारको प्रभावित कर सकते हैं। और इसका सरल उपाय यहांकी शिक्षाक्षेत्रमें बदल किया जाये, क्रांति लाई जाये।

आजसे कोई ८०-८२ वर्षपूर्व दर्शाया गया वैदिकधर्म-प्रवर्तकका निर्देशन हम नहीं भूल सकते। यद्यपि इस धर्म-प्रवर्तकका कार्य धार्मिकक्षेत्रमें प्रखर जागृति था तथापि अन्य अनेक क्षेत्रोंमें इनके विचार मौलिक हैं। इस लेखके लिये जो शिक्षा सम्बन्धी विचार आवश्यक है वे ही इसमें प्रदर्शित करना चाहता हूं। मेरी यह निश्चित धारणा है कि ये विचार अवश्य ही शिक्षापद्धति और शिक्षापाठ्यक्रममें उत्तम दिग्दर्शन कर सकते हैं। जिनके विचारोंका दिग्दर्शन आज मौलिक है और व्यवहार्य है उनका नाम वह शुभ नाम है जिसे भारतवासी जानता है और वह है ' महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती।'

धर्म जागृति और भारतीय सांस्कृतिक एकताको स्थैर्य प्रदान करनेवाली सुप्रसिद्ध पुस्तक ' सत्यार्थ प्रकाश ' में महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती तृतीय समुल्लास- ' अध्ययन व अध्यापन ' में लिखते हैं कि बालकोंको युवावस्था प्राप्त होने तक ब्रह्मचर्य व्रतसे रखकर शिक्षा देनी चाहिये। उन्हें कौटुम्बिक स्थित्यन्तरोंसे प्रादुर्भूत चिन्ताओंसे दूर रखना चाहिये और इसके लिये शिक्षास्थानका एकान्तस्थानमें शहर अथवा ग्रामसे दूर रहना आवश्यक है। राजासे लेकर रंकपर्यंत सर्व बालकोंको क्योंकि वे उसी शिक्षास्थानपर वसतिगृहोंमें निवास करते हैं, वस्त्र, पात्र, खानपान, आसन, शयन आदिमें भेद नहीं रखना चाहिये। बालकों युवकोंके साथ अध्यापकको सदा रहना चाहिये और उनका चित्त निश्चिन्त रखना चाहिये और निर्विकार रखनेका प्रयत्न होना चाहिये। अध्यापक भी सम्पन्न और सदाचारी होने चाहिये।

विद्यार्थियों पर शहर अथवा वसतीका निश्चय ही प्रभाव पडता है। कभी तो उचित पडता है और कभी अनुचित। अतः इससे दूर रहनेके लिये शिक्षास्थान निवास समवेत बसतीसे दूर रखना आवश्यक ही है। जिससे एकता बदलती परिस्थितिमें निर्धारित प्रगत पाठ्यक्रमका अपेक्षित परिणाम पडता है और बदलती परिस्थितिसे कुछ पीछे रही बसतीका प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष प्रभाव मनसे दूर रहता है, दूसरे कौटुम्बिक स्थित्यन्तरोंका आन्दोलन मन पर नहीं जकडा रहता। इस-लिये शिक्षास्थान अर्थात् ' आचार्य कुल ' शहरसे कमसे कम आठ मील दूर रहना चाहिये। बालकपन अर्थात् पांच वर्षकी आयुसे ही आचार्य कुलमें बच्चोंको प्रविष्ट करना चाहिये। बालिकाओंके ' आचार्य कुल ' में स्त्री ही अध्यापक होनी चाहिये और दो आचार्य कुलोंमें अन्तर चार मैल तो भी होना चाहिये। बालकसे युवकतक ब्रह्मचर्यव्रतसे रखना और दर्शन, स्पर्शन, एकान्त सेवन, भाषण, विषय कथा, परस्पर क्रीडा, विषयोंका ध्यान और संग जैसे आठ प्रकारके मैथुनोंसे पृथक् रखना इससे आसान हो जाता है। संक्षेपमें यह कि ' शिक्षा स्थान ' नगरोंसे दूर हो जिससे निश्चिन्तता और ब्रह्मचर्यका परिपालन हो सके और विद्यार्थियोंका मानसिक स्थैर्य बनाया रखा जा सके और विद्यार्जनमें मन केन्द्रित किया जा सके। किसी भी राष्ट्रसंविधानका औदार्य इसीमें है कि ' समानता ' अर्थात् सामाजिक समानताका उसमें व्यापक अधिष्ठान हो। और इसीलिये आचार्य कुलमें ' रंकसे राव ' तकका विद्या और निवासके किसी भी क्षेत्रोंमें भेदाभेद नहीं होना चाहिये ऐसा विधान है जिससे भविष्यमें ' समानता ' की समाजमें स्थिर नींव रख सके। राष्ट्रके संविधानकी उपयुक्त पृष्ठ भूमि तैयार की जा सके। विद्यार्थियों पर संस्कार उचित और अपेक्षित उसी समय पडते हैं जब कि अध्यापक अध्यापिकायें विद्यार्थियों पर त्रिकाल निरीक्षण रखें।

आगे महर्षि लिखते हैं, विद्यार्थियोंको प्रार्थनायें और विधिमें सम्मिलित होनेकी शिक्षा दी जाये। वैसे ही गायत्री मन्त्रका उपदेश और उसका जाप सिखाया जाये। इसका हेतु यही कि विद्यार्थियोंमें उपासनावृत्ति, नम्रता, उदार मन और अनुशासन प्रियताका निर्माण हो सके। वैसे ही परमात्मामें दृढ विश्वास निर्माण हो जाये। इनके कारण, शिक्षा सम्पादित होनेके पश्चात् सामाजिक क्षेत्रमें इनसे प्रादुर्भूत गुणोंका समाज संगठनके लिये लाभ हो।

महर्षिने शिक्षाके अंग बताये हैं। वे हैं, वेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, ज्योतिर्वेद और अर्थवेद। इनमें किन बातोंका समावेश होता है यह भी लिखा है। प्रत्येक अंगका संक्षिप्त विवरण नीचे लिखा जाता है।

वेद- वेद इस शब्दका अर्थ है ज्ञान। वेद इसीलिये ' सब सत्य विद्याओंका पुस्तक हैं। इस सत्य शास्त्रका अध्ययन आवश्यक है। वेद संहिता ग्रन्थ ऋक्, यजु, साम और अथ-

वेंमें विभक्त है। इसकी पढायीके सिवा महर्षिने विदुरनीति, मनुस्मृति (राज्य और समाजशास्त्र) उपनिषद् (आत्मज्ञान), रामायण महाभारत (इतिहास) और दर्शन (तत्वज्ञान और मानसशास्त्र) का भी इसीमें समावेश किया है। विश्वके सब धर्मोंमें एक तत्व समान रूपसे विद्यमान है और वह है 'सत्य'। सत्य वह है जो ईश्वरके गुण, कर्म और स्वभाव, सृष्टिक्रम, आप्त उपदेश, और आत्माकी पवित्रता और विद्याके अनुकूल सिद्ध होता हो। ये बातें जहां भी जिस धर्ममें पायी जावें वे सत्य हैं। और उनकी सीख देनी चाहिये। सत्य विद्याकी शिक्षा पाठ्यक्रममें रहनेसे आत्मिक, सामाजिक, शारीरिक उन्नति होती है। इससे ज्ञान, कर्म और उपासना वृत्तिका निर्माण होता है और त्रिविध उन्नतिमें इसकी सहायता मिलती है। समाजमें नैतिक वातावरण और आत्मबलका विकास होता है और समाज एक सूत्रमें आबद्ध होता है, जो राष्ट्रकी एकात्मताके लिये आवश्यक है।

मनके तीन कार्य स्पष्ट दिखायी देते हैं 'जानना' (Knowing) 'अनुभव करना' (Feeling) और 'कर्मप्रवृत्ति' (Willing)। इनका विद्या द्वारा अर्थात् सत्यशास्त्र द्वारा जब विकास होने लगता है तब अपनी चरम सीमापर जानना 'ज्ञान' में, अनुभव करना 'उपासना' में और कर्मप्रवृत्ति 'कर्म' में परिणत हो जाते हैं। जहां शिक्षा का ध्येय ही मनको अपनी चरम सीमापर ले जाना है। जिससे ज्ञान 'सत्यं', कर्म 'शिवं', और उपासना 'सुन्दरम्' अर्थात् 'सत् चिदानन्द' की अनुभूति करा सके इसलिये 'वेद' क्योंकि ज्ञान, कर्म और उपासनाका प्रखर स्रोत है अतः इसकी सीख ब्रह्मचारियों (विद्यार्थियों) के मनको विकसित और बलवान् करनेके लिये अत्यन्त उपयुक्त है। इसीलिये महर्षिने वेदका समावेश शिक्षामें किया है इस निश्चयके साथ कि वेद शिक्षा बिना शिक्षा अपने अर्थ और प्रभावमें नितान्त अपूर्ण है।

आयुर्वेद– आयुर्वेदका सरस अर्थ है वैद्यक शास्त्र। इस शास्त्रमें क्रिया, शस्त्र, छेदन, भेदन, लेप, चिकित्सा, निदान, औषध, पथ्य, शरीर, देश, काल और वस्तु परीक्षण अन्तर्भूत होते हैं। पाठक गण यदि इस नामोंकी शृङ्खलाके प्रत्येक शब्द पर विचार करेंगे तो उनकी असीम व्याप्तिवाले विषयोंका अन्दाजा हो पायेगा। प्रत्येक नाम शास्त्र है ऐसा लिखूं तो अत्युक्ति न होगी। अंग्रेजीमें यदि कुछ नामोंको लिखना हो तो लिखा जा सकता है जैसे– Anatomy, Diagnosis, Medicine, operatios (Major, Minor), Medical aids and applications, Materia Medica ets.

अन्तरबहिश्च शरीर, गृह और पडोसकी शुचि महत्वपूर्ण है। यदि इसकी सुरक्षा की जाये तो अनेक बीमारियों, व्याधियोंकी रोकथाम हो जाये। शुचि कैसे हो इसकी क्या पद्धति हो यह जबतक ज्ञात नहीं तबतक शुचिको व्यावहारिक रूप कैसे दिया जा सकता है। अतः आयुर्वेदकी शिक्षा देना आवश्यक है। यदि नहीं तो फिर हम सौ वर्षकी आयुतक अपने सबल नेत्रों द्वारा शरदः शतं कैसे देख पायेंगे और कैसे जीवेम शरदः शतंका समाधान कर सकेंगे।

छोटे, मोटे शरीर सम्बन्धी विचारों और रोगोंके लिये भी आजका क्या शिक्षित क्या अनाडी सर्व वैद्यकाधिकारीपर निर्भर है। यह दशा भारतकी सुदशाका प्रतीक नहीं हो सकती। इसे समाप्त करना ही आवश्यक है और इसके लिये आयुर्वेदकी कमसे कम सुगम शिक्षा पाठ्यक्रममें सम्मिलित की जाये जिससे शुचि– प्रारम्भिक चिकित्सा और अनुपानका ज्ञान हो सके। कबतक जनता रोग पीडित रहेगी। और कबतक उनके हालपर युंही छोड दिया जाये?

धनुर्वेद– धनुर्वेदको युद्धशास्त्रके नामसे पहचान सकेंगे। इसमें युद्धतन्त्र, शस्त्रास्त्र और उसका उपयोग, सैनिकी रचना, सेनाके व्यूह वैसे ही शासनशास्त्र और समाजशास्त्र (सामाजिक अनुशासन) का मोटे तौरपर समावेश होता है। आज ड्रिल और मासड्रिलके सिवा पाठशालाओंमें कुछ भी तो नहीं। इसकी ओर भी अनेक पाठशालाओंमें ध्यान नहीं दिया जाता और इसका कोई मूल्यांकन नहीं होता। अनुशासन हीनताका जो प्रादुर्भाव हो रहा है इसका यह भी एक कारण है। वैसे ही विद्यार्थी केवल पढायी की तरफ ध्यान देते हैं अपने शरीरकी ओर नहीं। मनका सम्बन्ध शरीरसे होता है। यह छोटी बात भी भुलायी गयी है। यदि शरीर बलवान् है तो मन भी बलवान् बनता है। क्या शरीर और मनसे निर्बल बने युवक राष्ट्रके मजबूत स्तम्भ बन सकते हैं।

अतः क्या यह आवश्यक नहीं कि पढायीके साथ साथ

बालकों, युवकोंके शरीर बलवान करनेकी तरफ और उन्हे अनुशासन बद्ध बनानेकी ओर ध्यान दिया जाये। यदि नहीं तो सर्वांग विकास कैसे सम्भव है? महर्षिका विचार तो यहांतक है कि ब्रह्मचर्य आश्रम समाप्त होनेके पश्चात् अर्थात् विद्यार्थी अवस्था समाप्त होनेके पश्चात् वह युवक, शिक्षित, प्रशिक्षित, सैनिक दिखायी दे। वह शासनशास्त्र और सामाजिक अनुशासनमें प्रवीण और युद्धशास्त्रमें महारथी हो। ऐसे युवक अपने राष्ट्रको प्रगति पथपर ला सकते हैं यह महर्षिका विश्वास है। और इसके लिये हमारा वैदिक इतिहास साक्षी है। इससे 'वयं जयेम' 'अहं इन्द्रो न पराजिग्ये' 'वयं स्वराज्ये आ यतेमहि' का हम अधिकांशमें समाधान कर सकेंगे।

गान्धर्व वेद— गान्धर्व वेद गायनशास्त्र है। इसमें स्वर, राग, रागिनी, समय, ताल, ग्राम, तान, वादित्र, नृत्य, गीत आदिका समावेश होता है। यदि इसका उपयोग सामवेद गायनके लिये हो तो सोनेमें सुहागा। इसके अतिरिक्त सृष्टि सौन्दर्य, प्रभु प्रार्थना, सामाजिक क्रान्ति और जागरण, पुनर्निर्माणके लिये इसका उपयोग हो सकता है। कामवासना प्रदीप्त करने करानेवाले प्रचलित ये राग, ये स्वर, ये रागिनियां ये ताल, तान कूड़ा करकट हैं जिसे सामाजिक नीतिके संरक्षणार्थ फेंक देना ही हितकर है। पर गायनशास्त्रका महत्व कम नहीं। गायन हमारी कोमल भावनाओंको प्रकट करता है। हमारी अनुभूतियोंको मधुर कण्ठसे और कोमल भावसे व्यक्त कराता है। किसी विदेशी कविने कहा भी है, ऐसा व्यक्ति जिसमें काव्य न हो उसपर विश्वास न किया जाना चाहिये। बात सच भी है। जिस व्यक्तिमें कोमल भाव नहीं क्या वह विश्वास योग्य है। कठोर मना मानो राक्षस है जिसकी कोई बात विश्वास पात्र नहीं। सुदैवसे हम भारतीय गर्वसे कह सकते हैं कि संसारमें हम विश्वास पात्र हैं और अपने शब्द और आनपर मर मिटते हैं। विदेशमें भी गायन है पर ना वह गायन है ना हि वह काव्य, अतः विदेशी स्वयं ही भारतीयोंको विश्वास पात्र कहते हैं और स्वयंको अप्रत्यक्ष रूपमें कम। इसका कारण हममें काव्य, गायन और सबसे बड़ी बात ईश्वर भक्ति है जो हमारी कोमल भावनाओंका सबसे बड़ा प्रतीक है। हमारे काव्य, हमारे गायन, सृष्टि सौन्दर्य, प्रभु प्रार्थना, सामवेद पाठ, सामाजिक संगठन, जागरण और पुनर्निर्माणकी उत्तमोत्तम भावनाओंको प्रकट करनेके लिये हैं।

कामवासना प्रदीप्त करनेवाले गाने और काव्य व्यभिचारी व्यक्तिके अनुकूल और भारतीय प्रकृतिके प्रतिकूल हैं। पर खेदकी बात है कि आजकल इस प्रकृतिके प्रतिकूल 'अप्राकृतिक' व्यवहार चल रहे हैं और विदेशियोंका अन्धानुकरण 'नकल नवीस अकल न बाषद' के समाधानमें गर्वके साथ किया जा रहा है। इसका कारण एक ही कि शिक्षामें कोई आदर्श गायन शास्त्र और इसपर आधारित पाठ्यक्रम नहीं और फलस्वरूप प्राकृतिक कोमल भावनाओंकी दिशा 'काम' की ओर मोड़ ले रही है। आदर्शहीनता भी तो इन असत्य मार्ग पर ले जाती है। अतः पाठ्यक्रममें केवल कवितायें रखनेसे काम नहीं चलेगा बल्कि इसके स्थानपर गान्धर्ववेदको इसके उपरोक्त अर्थमें समाविष्ट किया जाये। इससे युवक अपने कोमल भावोंका विकास कर सकेंगे और सदाचारकी ओर मनसा प्रवृत्त हो सकेंगे। जिसकी परिणति कलाके निर्माणमें हो सकेगी जिसके फल स्वरूप, शिल्प, गान, साहित्य और चित्रका सृजन हो सकेगा।

शान्ति निकेतनमें किसी अंशमें इसकी शिक्षाका प्रबन्ध है। और शायद भारतवर्षमें यही एक संस्था है जिसमें गायन, वादन, नृत्यादिका समावेश है।

ज्योतिर्वेद— इसमें बीज गणित, अंकगणित, भूगोल, खगोल, भूगर्भ, आदिका समावेश होता है। यह ज्ञान क्यों

महत्वपूर्ण है यह स्वयं ही स्पष्ट है, पाठक स्वयं इसपर विचार करें।

अर्थवेद— इसमें उद्योगकी पढायी होती है। यह शिक्षा पाठ्यक्रममें इसीलिये है कि उपर्युक्त विद्यायें प्राप्त करनेके पश्चात् युवक बेकार न रहे। वह उद्योग चलाकर अपना जीवन बना सके। और कुटुम्बकी सहायता कर सके। अर्थवेदमें व्यापक रूप शिल्प विद्या (बान्ध काम), पदार्थगुण विज्ञान, हस्तक्रिया, यन्त्ररचना और उपयोग आदिका समावेश होता है। पदार्थ गुण विज्ञानका अर्थ है आजका सम्पूर्ण विज्ञान इसे Science कहते हैं। पदार्थ गुण विज्ञानका समावेश अर्थवेदमें इसीलिये है कि इस ज्ञानसे ऐसी वस्तुओंका निर्माण किया जाये जो मानवजातिके कुछ काम आसके। अणुशक्तिका ज्ञान प्राप्त होनेके पश्चात् उसे द्वितीय विश्वयुद्धमें मानव संहारके काममें लाया गया। वास्तविक उपयोग मानवकी अनेक जरूरतोंको और ज्ञानके किसी और क्षेत्रके दरवाजे खोलनेमें इसका उपयोग किया जासकता था पर उस समय संहार यही एक राक्षस वृत्ति दिल व दिमाग पर सवार थी। अनेक राष्ट्रोंने जब यह देखा कि अणुबमका छोटा संच कमजोर राष्ट्रोंको दबानेके काममें लाभदायक है फिर क्या था अणुशक्ति ऐसे ही हथियार बनानेके उपयोगकी है और 'विज्ञान' युद्धकी तैयारीके लिये ही है यह धारणा दृढ मूल हो गयी। परन्तु 'विज्ञान' का सही उपयोग मानवके हितके लिये है। और यह बात महर्षिने अर्थवेदमें इसका समावेश कर बतायी है। धनुर्वेदमें इसको नहीं लिखा है।

यदि विश्वभरमें सत्यार्थ प्रकाश जैसी मौलिक पुस्तकका अनेक भाषाओंमें टीकात्मक प्रचार किया जाता तो सम्भव है मानवजातिका अधिकांश भाग अपनी मनोभूमिका इस विचारके अनुकूल बनाता। महर्षिका प्रत्येक वाक्य और उसकी तुला कितनी मौलिक, गम्भीर और अर्थपूर्ण है इसका आज अनुभव हो सकता है। इसी प्रकार हस्तक्रियामें हाथसे तैयार किये जानेवाले पदार्थ और यंत्र रचनामें यंत्रोंके निर्माण और उस द्वारा तैयार किये जानेवाले पदार्थकी निर्मितिका समावेश होता है। और आज इसीकी शिक्षाके क्षेत्रमें कमी है। इसको कमीका परिणाम आज हमारे समक्ष है, युवक स्नातक होकर भी अपने जीवन यापनमें अन्धःकार अनुभव करते हैं। विश्वविद्यालयोंके प्रमाणपत्र प्राप्त करके भी बेकारी का भूत मनपर सवार रहता है और मातापिता निश्चिन्तताकी साँस नहीं ले सकते।

अपने पुत्र पुत्रियोंकी बेकारी और प्रान्त प्रान्तमें इन्टरव्यूके भ्रमण और उसके परिणामका तिमिर सामने खेलता रहता है। और इसपर भी कोई नोकरी मिल भी जाये तो क्या राष्ट्रीय उत्पादन और राष्ट्रीय अर्थ वृद्धिमें शिक्षा प्राप्त युवकों के योगदान मिलनेका सन्तोष जनक निःश्वास राष्ट्रीय मन्त्री ले सकते हैं? उत्तर नकारात्मक ही आवेगा यह पाठक गण गण स्वयं अनुमान कर सकते हैं। इसीलिये राष्ट्रपिता म० गान्धीने मूलोद्योगका प्रारम्भ किया। यद्यपि इसकी प्रेरणा उन्हें शायद स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिये उस समयके विदेशी शासकोंको इस द्वारा अर्थ व्युहमें पकडनेके लिये उपयुक्त प्रतीत होती थी और यही अस्त्र प्रभावी और परिणाम कारक होगा ऐसा दृढ विश्वास था इसलिये सूझी होगी और उसका प्रचार हुआ, पर शिक्षाके क्षेत्रमें इसका व्यापक रूप अर्थात् यंत्र और हस्त द्वारा पदार्थ तैयार करनेकी शिक्षाका पाठ्यक्रममें समावेशकी सर्वप्रथम प्रेरणा (विचार) आज ८२ वर्ष पूर्व आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि स्वामीदयानन्द सरस्वतीको ही हुई थी यह सूर्यप्रकाश इतना स्पष्ट सत्य है। इसी प्रकार 'विज्ञानका उपयोग उद्योग और निर्माणमें' का सिद्धान्त इसी आदित्यका है यह पाठकगण स्वयं अनुमान कर सकते हैं। इसके लिये अधिक लिखनेकी आवशकता नहीं।

यदि 'अर्थवेद' का समावेश पाठ्यक्रममें हो तो कलका स्नातक आजकी तरह चारदीवारीमें बैठ अपनी नोकरी जानेसे बेकारी आयेगी इस भयसे ग्रस्त होनेसे कलम चलाता रहता है वह इस स्थानको रिक्त करके हाथमें 'कर्म' लेकर अपने कुटुम्ब और राष्ट्रकी अर्थमें वृद्धि कर सेवा कर पायेगा। कुटुम्ब और राष्ट्रको अर्थ व्यवस्था मजबूत होते देर न लगेगी। क्योंकि वह 'विश्वकर्मा' बना है।

संक्षेपमें यहां मुझे यही बताना है कि उपर्युक्त शिक्षा पद्धति जिसे 'आचार्य कुल शिक्षा पद्धति' कह सकते हैं कितनी बहुवंगसे उपयुक्त है। व्यक्तिकी शारीरिक, आत्मिक कुटुम्बकी आर्थिक और सौख्य, समाजकी नैतिक और एकात्मता और राष्ट्रकी आर्थिक, सैनिकी तथैव प्रगति, प्रतिष्ठा, सम्मान ऐसे विविध क्षेत्रोंमें उन्नति यह शिक्षा पद्धति कितनी लाभदायक सिद्ध होनेवाली है इसका पाठक गण स्वयं विचार कर सकते हैं। और इस परिणाम पर हम आ सकते हैं कि आजकी शिक्षामें आमूलचूल परिवर्तन होना आवशक है। केवल पुस्तकोंमें वृद्धि करनेसे नहीं बल्कि व्यावहारिक रूपमें परिवर्तन आवश्यक है। पुस्तकोंके स्थानपर 'क्रिया' को महत्त्व मिलना चाहिये। इससे ज्ञानके साथ साथ 'अनु-

भव ' को भी महत्व मिल पाये। इसीको महर्षिने महत्व पूर्ण बताया है।

' अज्ञान ' और ' बेकारी ' से प्रादुर्भूत, नागरिकोंमें ' आर्थिक असमानता ' के भावके समाधानका जो महान् प्रश्न आज राष्ट्रके सामने है वह शिक्षा पद्धतिमें महत्वपूर्ण व्यावहारिक परिवर्तन करनेसे और उसका दूरगामी प्रभाव ध्यानमें लानेसे कहांतक हल हो सकता है इस पर विचार करनेको आज तो भी परिस्थितिने बाध्य किया है। आमूल-चूल परिवर्तनमें व्यक्ति और समाजके मौलिक गुणोंका विकास और उसे सर्वांग समृद्धिकी ओर ले जानेवाला ' आचार्य कुल शिक्षा पाठ्यक्रम ' कभी भी नहीं भुलाया जा सकता। केवल आर्थिक प्रश्नके समाधानपर आधारित दृष्टिकोणसे तैयार होने-वाला पाठ्यक्रम सर्वांगपूर्ण नहीं हो सकता यह सदैव ध्यानमें रखनेकी बात है। क्योंकि बहुविध गुणोंका इससे विकास नहीं होता और समाज और राष्ट्रको आवश्यक गुण तैयार नहीं होते। हां स्वार्थवृत्ति अवश्य पनपेगी ऐसा कह सकते हैं। अनेक कुवृत्तियोंपर अंकुश बिठानेवाला उपरोक्त पाठ्यक्रम इसके विविध अंगोंकी उपयोगिता और मौलिकताको ध्यानमें रख कितना व्यापक विशाल और व्यवहारिक है यह उक्त अंगोंके मनन करनेसे स्पष्ट होगा।

भारतीय संस्कृतिका विनाश

[भोजन, शिक्षा चिकित्सा एवं माध्यमसे]

(लेखक— श्री रणजित 'तन्मय' एम. ए., एल. एल. बी., सिद्धान्त वागीश)

सुधारकके कतिपय गतांकोंमें भारतीय संस्कृतिका विनाश राष्ट्र भाषाकी हत्या एवं परिवार–नियोजन आदि द्वारा कैसे किया जा रहा है ? इस सम्बन्धमें अपने विचार व्यक्त कर चुका हूं। आज भारतीय संस्कृतिका विनाश भोजन, शिक्षा एवं चिकित्साके साधनोंसे कैसे किया जा रहा है ? इस सम्बन्धमें संक्षेपमें प्रकाश डालनेका यत्न किया है।

भोजन द्वारा

१. आमिषाहार प्रोत्साहन— सात्विक भोजन–अन्न, दूध, घी, शाक, फल आदि—द्वारा शारीरिक व मानसिक उन्नति भारतीय संस्कृतिकी अनुपम देन है। पर आजकी भारत सरकार मत्स्यपालन, मुर्गी पालनादि तामसिक (राक्षसी) भोजनको भोजन समस्या समाधानके बहाने प्रोत्साहन देकर भारतीय संस्कृति पर भयंकर कुठाराघात कर रही है जिससे कुप्रवृत्तियों एवं कुविचारोंकी वृद्धि दिनोंदिन हो रही है एवं चरित्रभ्रष्टता बढकर भारतीय संस्कृति ही नहीं मानवताकी भावनाओंका भी भारी ह्रास हो रहा है। उल्टी भुखमरी बढ रही है।

२. डालडा प्रोत्साहन—१२ अगस्त सन् १९५६ ई. को संसदमें स्वास्थ्य मंत्रीने कहा था कि डालडाके प्रयोगसे हृदय और मस्तिष्कके रोगोंमें वृद्धि हुई है। फिर भी सरकार डालडाको बन्द करना तो दूर उल्टा इसे रंग–मिश्रणकी योजनाको कार्य रूपमें परिणत न करके भी प्रोत्साहना दे रही है, केवल भोजन–समस्याके नामपर जबकि यही काम गोरक्षाके द्वारा सुचारू रूपसे संपन्न हो सकता था और जबकि रोग बढते ही जा रहे हैं। रिश्वत खोर अधिकारी बुराईको जानते हुए भी उसका प्रतिकार नहीं होने देते। इससे अधिक अन्याय व अंधेरगर्दी क्या हो सकती है ? जनताकी सरकार जनताके स्वास्थ्य व जीवनके साथ खिलवाड कर रही है।

३. पशुहत्या वृद्धि (१) चाहे अंग्रेजी फौजके चले जाने से अब तदर्थ गोहत्या नहीं होती, पर कलकत्ता बंबई आदिमें बडे–बडे वधिकालयोंका खोला जाना छुपे छुपे वर्जित प्रदेशोंमें भी गोहत्याका होना एवं भारतीय गोरक्षा समिति द्वारा प्रकाशित आँकडों आदिसे यह सिद्ध हो रहा है कि गोहत्या एवं अन्य पशु हत्या अंग्रेजी कालकी अपेक्षा बढी ही है, घटी नहीं। यह सब कुछ तो भोजन समस्या समाधानके नाम पर भारतीयोंकी निरामिषभोजित्वकी अच्छी आदतोंमें परिवर्तन करनेके लिये तथा अच्छी विदेश नीतिके कारण भारतीयोंकी दुर्भावना प्राप्त करके भी अमरीकादिकी सद्भावना व डालरादिकी प्राप्तिके लिये ही अंधाधुन्ध रूपसे किया जा रहा है।

(२) गोचर भूमिका नाश—बस्तियोंके बढनेसे गोचर या पशुचर भूमिकी कमी होती जा रही है, चारा न होनेसे पशुओंको काटनेकी प्रवृत्ति बढती जा रही है। 'उजाडेंगे शहरोंको जंगल बसा कर' का गीत गानेवाले आर्यसमाजी भी गुरुकुल व आश्रमोंको न बढाकर बडी बडी इमारतों व बस्तियोंके बढानेमें लगे हैं।

(३) ट्रेक्टरादिके प्रयोग द्वारा– कृषिके नये साधनोंके द्वारा बैलादि पशुओंके प्रयोगकी आवश्यकता कम होती जा रही है (चाहे धरतीकी शक्ति शीघ्र नष्ट हो जावे) जिससे उन्हें कटानेकी प्रवृत्ति बढ रही है।

इस प्रकार गांधीजीके चेले ही गांधीजीकी आशाओं पर पानी फेर उन्हें धोखा दे रहे हैं जब कि गांधीजी गोरक्षाका माहात्म्य स्वराज्यसे भी अधिक समझते थे।

संसारपर विजय कौन प्राप्त कर सकता है ?

[लेखक— श्री भास्करानन्द शास्त्री, सिद्धान्त-वाचस्पति, प्रभाकर, स्वाध्याय-मण्डल, पारडी (गुजरात)]

(६) सम्यक् स्वाध्ययनागमात् ।

वेदों, शास्त्रों और आर्षग्रन्थोंके सम्यक् प्रकारसे अध्ययन, पठन-पाठन करनेसे मनुष्य विश्वविजयी बनता है। क्योंकि वेदों और आर्ष ग्रन्थोंके अध्ययनसे बुद्धि निर्मल होती है और आत्मिक, शारीरिक, मानसिक आदि सम्पूर्ण शक्तियोंका विकास होता है। इसी कारण महर्षि दयानन्दजीने अपने बनाये आर्यसमाजके तीसरे नियममें लिखा— 'वेद सब सत्य विद्याओंका पुस्तक है वेदका पढना पढाना और सुनना सुनाना सब आर्योंका परम धर्म है।' वेदोंके अध्ययन पठन पाठन और स्वाध्यायको वैदिक ऋषियोंने समझा था, और इसीके द्वारा विश्वके सम्पूर्ण गुप्तसे गुप्त रहस्यपूर्ण समस्याओंको हल करनेमें समर्थ हुये थे। वेदोंके अन्दर ज्ञान, विज्ञान, गणित, खगोल, भूगोल, कला कौशल, वैद्यक, राजनीति आदि सम्पूर्ण विद्याओंका समावेश है। अब प्रथम वेद और उसके अङ्ग उपाङ्गादि तथा उनमें आये हुये विद्याओंपर विचार करते हैं—

वेद– चार हैं, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, ये स्वतः प्रमाण हैं। और बाकी जो वेदानुकूल हैं वे परतः प्रमाण हैं। जीवनके सर्वोच्च लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये जिन चार साधनोंकी आवश्यकता है वे इन चारों वेदोंमें बतलाये गये है। अर्थात् ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान।

संसारमें तीन पदार्थ अनादि एवं नित्य हैं। वे हैं परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति। परमात्मा सत्, चित्, आनन्द स्वरूप है। जीवात्मा सत् और चित् है। प्रकृति केवल सत् है। परमात्मा ही सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्डका बनानेवाला, स्थिर रखनेवाला तथा प्रलय करनेवाला है। उसके अन्दर अनन्त ज्ञान, अनन्त बल और अनन्त सामर्थ्य है। वह अपने कार्यमें किसीकी सहायताकी अपेक्षा नहीं रखता है। 'स्वाभाविकी ज्ञान, बल क्रिया च' यह वाक्य केवल उसीके लिये ही उपयुक्त है अन्यके लिये नहीं। उस परमात्माके ज्ञानको ही हम 'वेद' इस नामसे पुकारते हैं। इस वेदके महान् ज्ञानको परमात्माने आदि सृष्टिमें अर्थात् आजसे एक अरब सत्तानवे करोड उनतीस लाख और उनचास हजार वर्ष पूर्व चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिराके अन्तःकरण (हृदय) में प्रकट किया और उन ऋषियोंने बादमें सबके उपकारार्थ इस ज्ञानका लोगोंमें विस्तार किया। वेद ज्ञानके प्रकाशित करनेके सम्बन्धमें यजुर्वेदमें इसका प्रमाण निम्न प्रकारसे है। यथा—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दा ᳪ सि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥
(यजुर्वेद ३१।७)

उस यज्ञ पुरुष परमात्मासे, जो सर्व ग्रहणीय है, ऋग्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और यजुर्वेद प्रकट हुये। वेद-मन्त्रोंकी संख्या निम्न प्रकार है—

ऋग्वेद— १० मण्डल, आठ अष्टक, १०८७ सूक्त १०४०२ मन्त्र हैं।

यजुर्वेद— ४० अध्याय १९७५ मन्त्र हैं।

सामवेद— पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक दो भाग हैं, १८७५ मन्त्र हैं।

अथर्ववेद— २० काण्ड, ७३० सूक्त, ६००० मन्त्र हैं।

कुल वेद मन्त्रोंकी संख्या २०२५२ (बीस हजार दोसौ बावन) है।

वेदके षड्अङ्ग हैं शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, इन अङ्गोंके द्वारा वेदार्थ समझनेमें बडी सहायता मिलती है। वेदोंकी शाखायें भी बहुत हैं उन शाखाओं की गणना महाभाष्य आदि ग्रन्थोंके आधारपर निम्नप्रकार है—

ऋग्वेदकी २०, यजुर्वेदकी १००, सामवेदकी ९९९ और अथर्ववेदकी ८ इन सबका योग ११२७ है।

उपवेद— चारों वेदोंके चार उपवेद अर्थात् अर्थवेद ऋग्वेदका, धनुर्वेद यजुर्वेदका, आयुर्वेद अथर्ववेदका और गन्धर्ववेद सामवेदका उपवेद है।

वेदोंके उपाङ्ग— वेदोंके छः उपाङ्ग हैं जिनको छः दर्शन अथवा छः शास्त्र भी कहते हैं। कपिलका सांख्य, गौतमका न्याय, पातञ्जलिका योग, कणादका वैशेषिक, व्यासका वेदान्त और जैमिनिका मीमांसा दर्शन है।

ब्राह्मणग्रन्थ— ऋग्वेदका ऐतरेय ब्राह्मण, यजुर्वेदका शतपथ, सामवेदका साम ब्राह्मण (ताण्डय या छान्दोग्य ब्राह्मण) और अथर्ववेदका गोपथ ब्राह्मण है।

उपनिषद्—जिनसे हमें ब्रह्मविद्या प्राप्त होती है, उन्हें 'उपनिषद्' कहते हैं। ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक ये मुख्य हैं।

इस युगके महान् सुधारक, बालब्रह्मचारी, वेदोंके प्रकाण्ड विद्वान् महर्षि दयानन्दजीने वेदोंके अध्ययन, पठन पाठन प्रणालीको पुनर्जीवन प्रदान किया। वेदोंके अध्ययनसे हमें किन किन विद्याओं अथवा चीजोंकी प्राप्ति होती है उनसे सम्बन्धित कुछ मन्त्र नीचे देते हैं—

ब्रह्मविद्याके मन्त्र

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा, मा गृधः, कस्य स्विद्धनम्॥
(यजु. ४०।१)

यह सब जो कुछ पृथ्वीपर जगत्– चराचर वस्तु है ईश्वरसे आच्छादन करने योग्य अर्थात् आच्छादित है उस ईश्वरके दिये हुये पदार्थोंसे भोग करो, किसीके भी धनका लालच मत करो।

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥
(यजु. ४०।३)

जो कोई आत्माके हनन करनेवाले, आत्माके विरुद्ध आचरण करनेवाले मनुष्य हैं, वे मर कर अन्धकारसे आच्छादित हुये, प्रकाशरहित नामवाली जो लोक–योनियां हैं, उनको प्राप्त होते हैं।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विचिकित्सति॥
(यजु. ४०।६)

जो कोई समस्त चराचर जगत्को परमेश्वर हीमें और सब जगत्में परमेश्वरको देखता है इससे वह निन्दित नहीं होता।

यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥

जिस अवस्थामें ज्ञानी पुरुषकी दृष्टिमें समस्त चराचर जगत् परमात्मा ही हो जाता है। उस अवस्थामें एकत्वको देखनेवाले अर्थात् प्रेममें अपनी सुध भूल जानेवालेको, कहाँ मोह और कहाँ शोक ?

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ
शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः
स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधा-
च्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥ (यजु. ४०।८)

वह ईश्वर सर्वत्र व्यापक है, जगदुत्पादक, शरीररहित, शारीरिक विकाररहित, नाडी और नसके बन्धनसे भी रहित, पवित्र, पापसे रहित, सूक्ष्मदर्शी, मननशील, सर्वोपरि वर्तमान, स्वयंसिद्ध, अनादि प्रजा (जीव) के लिये ठीक–ठीक कर्मफलका विधान करता है।

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयꣳ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥
(यजु. ४०।१४)

जो ज्ञान और कर्म इन दोनोंको साथ–साथ जानता अर्थात् प्रयोगमें लाता है, वह कर्मसे मृत्युको तैर कर, ज्ञानसे अमरताको प्राप्त होता है।

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम्।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳ स्मर॥
(यजु. ४०।१५)

शरीरमें आने जानेवाला अनिल–जीव अमर है, परन्तु यह शरीर भस्म पर्यन्त है, इसलिये अन्त समयमें हे जीव ! ओ३म्का स्मरण कर, निर्बलता दूर करनेके लिये स्मरण कर और अपने किये हुये का स्मरण कर।

शिवसंकल्पके मन्त्र

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकन्तन्मे मनः शिव-
संकल्पमस्तु (यजु. ३४।१)

जो जाग्रत अवस्थामें दूर दूर भागता है और स्वप्नावस्था में भी वैसा ही भागता है, वह दूर जानेवाला, ज्योतियोंका ज्योति-इन्द्रियोंको प्रकाश देनेवाला, एकमात्र (दैवम्) दिव्यशक्ति युक्त मेरा मन अच्छे संकल्पवाला हो।

स्वराज्यके मन्त्र

यदजः प्रथमं संबभूव स ह तत् स्वराज्यमियाय।
यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम्॥ (अथ. १०।७।३१)

पुरुषार्थ करनेवाला पहले जब संगठित रूपमें प्रकट होता है तब वही स्वराज्यको प्राप्त करता है, जिससे दूसरा कोई श्रेष्ठ पदार्थ नहीं है।

संगठनके मन्त्र

सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इडस्पदे समिध्यसे स नो वसून्याभर॥
(ऋ. १०।१९१।१)

हे बलवान् और श्रेष्ठ तेजस्वी ईश्वर! आप सबको निश्चय से एकत्रित करके सम्मिलित करते हो और भूमिपर उत्तम प्रकारसे प्रकाशित होते हो। वह आप हम सबके लिये धनोंको प्राप्त करावें।

ईश्वर माता पिता और सखा सब कुछ है

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अथा ते सुम्नमीमहे॥ (सामवेद उ. ४।२।१३)

हे सबमें वास करनेवाले, असंख्य कर्म करनेवाले परमात्मन्! आप ही हमारे माता पिता हैं, इसलिये हम आपसे सुखकी याचना करते हैं।

इन्द्रिय विजयसे सफलता

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।
गोजित् भूयासं अश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित्॥
(अथर्व. ७।५०।८)

मेरे दायें हाथमें कर्म, पुरुषार्थ है और विजय मेरे बायें हाथमें है। मुझे पुरुषार्थ करनेसे पहले इन्द्रियोंका विजेता होना चाहिये तब मैं राष्ट्रका जीतनेवाला, धन और सोनेका जीतनेवाला बनूँगा।

तीन देवी

इडा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्तु अस्रिधः॥ (ऋग्वेद १।१३।९)

भाषा, विद्या और मातृभूमि, कल्याण करनेवाली और हानि न पहुँचानेवाली तीन देवियाँ हमारे अन्तःकरणमें निवास करें।

छः शत्रुओंका दमन

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्। सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्रमृण रक्ष इन्द्र॥ (अथर्ववेद ८।४।२२)

उल्लूके समान व्यवहार अर्थात् अन्धकार प्रियता-अज्ञान, भेडियेकासा व्यवहार क्रूरता, कुत्तेकासा व्यवहार- अपनी जातिवालोंसे लडना तथा अन्योंके सामने दुम हिलाना-खुशामद करना, चिडियोंकासा व्यवहार- कामातुरता, गरुडका सा व्यवहार- अभिमान, गिद्धोंका व्यवहार- अन्योंके पदार्थोंका लोभ, ये ६ अज्ञान, क्रूरता, पारस्परिक विद्वेष, कामातुरता, अभिमान और लोभ शत्रु हैं, इन्हें हे इन्द्र परमेश्वर! मार और पत्थरसे मारनेके सदृश इन राक्षसोंको दूर कर।

सीसेकी गोली

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम्।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा॥
(अथर्व. १।१६।४)

यदि हमारी गायको, घोडेको और आदमीको तू मारता है तो तुझको सीसेकी गोलीसे हम बींध देंगे जिससे तू हमारे वीरोंका नाश न कर सके।

देवोंकी अयोध्यापुरी

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः॥
(अथर्व. १०।२।३१)

आठ चक्र और नौ द्वारवाली देवोंकी पुरी अयोध्या- मनुष्य शरीर है। उसमें सुवर्णमय कोष है। वहीं प्रकाशसे आवृत स्वर्ग जीवात्माके रहनेका स्थान हृदयाकाश है।

घरके दो बालक

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू
क्रीडन्तौ परि यातोऽर्णवम्।
विश्वान्यो भुवना विचष्ट ऋतूँरन्यो
विदधज्जायसे नवः॥ (अथ. ७।८१।१)

(एतौ शिशू क्रीडन्तौ) ये दोनों बालक अर्थात् सूर्य और चन्द्र खेलते हुये (मायया पूर्वापरं चरतः) शक्तिसे आगे पीछे चलते हैं। (अर्णवं परियातः) समुद्रतक भ्रमण करते हुये पहुँचते हैं। (अन्यः विश्वा भुवना विचष्टे) उनमेंसे एक सब भुवनोंको प्रकाशित करता है। और (अन्यः ऋतून् विदधत् नवः जायसे) दूसरा ऋतुओंको बनाता हुआ वारं-बार नवीन नवीन बनता है।

राजाका कर्तव्य

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः
सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं नः
कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ (अथ. ७।९१।१)

राजा उत्तम रक्षक अपने सामर्थ्य पर विश्वास रखनेवाला धनवान् प्रजाकी रक्षा करके उनको सुख देनेवाला होवे। शत्रु-ओंको दूर करे और उनको रोक रखे। प्रजाको अभय देवे और प्रजाको धन सम्पन्न करे।

इस प्रकार वेदोंमें ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षात्रविद्या, नक्षत्र-विद्या, आयुर्विद्या, धनुर्विद्या, गान्धर्वविद्या राजविद्या, अर्थ-विद्या, गणितविद्या, ज्योतिषविद्या, भूविद्या, विद्युत्विद्या, खगोलविद्या, यानविद्या, युद्धविद्या, सर्पविद्या आदि अनेक विद्याओंका वर्णन है। जिनके सम्यक् प्रकार अध्ययन पठन पाठन करनेसे मनुष्य विश्वविजयी बन सकता है।

× × ×

मनन माला

(संग्राहक— श्री सुदर्शन, मरुच)

१. महान् बननेके लिये महापुरुषोंके जीवनचरित्र पढना चाहिये।
२. वहम और भय दोनों मनुष्यको कंगाल बनाते हैं।
३. सृष्टिकर्ता परमात्मा एक है अनेक नहीं।
४. परमात्माको याद करनेसे उसके गुण मनुष्यमें आते हैं।
५. यदि मनुष्यको सुखकी इच्छा है, तो अन्यका हित विचारना चाहिये।
६. मानवसेवा ही प्रभुसेवा है।
७. जो मनुष्यने समय गवांया तो जिंदगी ही गवांई समझना चाहिये।
८. जो मनुष्य अन्यकी निंदा करता है, वह महान् कैद-खानेमें है ऐसा समझना चाहिये।
९. किसीके दोषोंको या दुर्गुणोंको उसके पीछे कहते फिरना और एकांगी दृष्टिसे केवल दोष ही देखना और दिखाना तथा सद्गुणोंको नहीं बताना ही निंदा है।
१०. परिश्रमका बदला परमात्मा देता ही है।
११. आनंद ही मनुष्यकी महा मिल्कत है।
१२. दया धर्मका मूल है इसलिये प्राणीमात्रपर दया रखनी चाहिये।
१३. असत्यको त्याग कर सत्यको ही अपनाना चाहिए।
१४. जहाँ सत्य है, वहाँ सत्य नारायण है।
१५. मात्रासे ज्याद खाना, पीना और बोलना निरर्थक है।
१६. मनुष्यको उत्तम और सच्चे कार्योंमें ही लगा रहना चाहिये।
१७. मनुष्य पुण्य कमाता है वही स्वर्ग है।
१८. मनुष्यको आशावादी बनना चाहिये
१९. मनुष्यकी निराशा वही दुःखकी जननी है।
२०. सुख और दुःख एक साथ ही रहते हैं।
२१. सुख और दुःख मनुष्यके दाहिना और बांया ऐसे दोनों अंगके समान है।

+ + +

भारतीय कथाएं और टॉलस्टॉय

(लेखक— श्री प्रो. विष्णुदयाल, एम्. ए.)

★

यह विदित होते ही कि रूसके महान् साहित्यकार लिओ टॉलस्टाय वेदकी ओर खिंच गये थे, पाठकोंको हर्ष हुआ।

टॉलस्टॉयके युगमें यूरपकी विभिन्न भाषाओंमें वेदका अनुवाद होने लग गया था। अनुवादोंमें त्रुटियां रह गई थीं तो सही किन्तु साहित्यिक अभिरुचिवाले इतना तो समझ जाते थे कि विश्व साहित्यमें वेदको सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।

भारतीय साहित्यसे मध्य युगमें ही यूरप परिचित होने लगा था। लघु कथाओंका प्रचार खूब होता था। एक समय आया कि जब पंचतन्त्रका अनेक यूरपीय भाषाओंमें उल्था हुआ। लिओ टॉलस्टॉय ही की टक्करके ग्रन्थकार और कवि उन कथाओंको अपनाते थे। उन्नीसवीं सदीके आरंभमें पचास उपनिषदोंका संग्रह प्रचार पाने लगा था। ऐसी कथाओंको शोपन्हौर आदि तत्वज्ञानी औरोंकी अपेक्षा अधिक समझते थे।

इन दोनों प्रकारकी कथाओंका प्रवेश पश्चिममें हो चुका था जब वहांके श्रेष्ठ साहित्यसेवी भारत विषयक कथा लिखने लगे।

फ्रांसीसी लेखक बेरनार्दें दे सें प्येर दे साहित्यसेवी हैं जिनको ऐसोंमें सम्मिलित किया जाता है। इन्होंने अठारहवीं सदीके अन्तिम चरणमें 'भारतीय झोंपडी' नामकी कथा लिखी थी। इस पुस्तकमें इन्होंने वेदका उल्लेख किया है 'वेद' नाम तब तक सुननेमें आ गया था।

वैदिक कालके पश्चात् भारतमें अनेक कुरीतियोंने घर कर लिया था। लोग अपने जैसे मानवको अछूत कह कर ठुकराने लगे थे। सें प्येरने अपनी कथामें दर्शाया कि यूरपसे भारतमें पधारे हुए एक यात्रीका बडोंने तिरस्कार किया जब कि एक तथाकथित अछूतने उनका आदर किया।

दक्षिण अफ्रीकामें एक दिन एक अदर्ध फ्रेंचने महात्मा गांधी को यह कथा सुनाई। कहना न होगा कि तिरस्कृत लोगोंके इन उद्धारकोंके अंग फूले न समाये। उन्हें ५० साल बाद यह कथा याद आई थी और एशियाई सम्मेलनमें यह सुना दी थी।+

+ "I was wondering as to what I was to speak to you ... ...

You, friends, have not seen the real India and you are not meeting in conference in the midst of real India. Delhi, Bombay, Madras, Calcutta, Lahore– all these are big cities and they are, therefore, influenced by the west.

I then thought of a story. It was in French and was translated for me by an Anglo-French philosopher. He was an unselfish man. He befriended me without having known me, because he always sided with the minorities. I was not then in my own country. I was not only in a hopeless minority but in a despised minority, if the Europeans in South Africa will forgive me for saying so. I was a coolie lawyer. At that time, we had no coolie doctors, and we had no coolie lawyers. I was the first in the field. You know, perhaps, what is meant by the word "coolie."

This friend– his mother was a French woman and his father was an Englishman--said : "I want to translate for you a Franch story. There were three scientists who went out from

गांधी और टॉलस्टॉयमें शिष्य गुरुका सम्बन्ध था। जिस सें प्येरसे महात्माजी प्रसन्न हुए थे उन्हें टॉलस्टॉय नापसन्द कर ही नहीं सकते थे। उन्होंने सें प्येरकी लघुकथा 'सूरतका कहवा-घर' इतना पसंद किया कि उसका अनुवाद किया और अपनी कथाओंके उस संग्रहमें उचित स्थान दिया जिसका नाम है 'तेईस कथाएं।'

इस वर्ष क्या फ्रांस क्या मारीशसमें फ्रेंच लेखक सें प्येरका गुणानुवाद किया गया और अभी किया जा रहा है। १८१४ में अर्थात् आजसे ठीक डेढ शती पूर्व उनका देहावसान हुआ था।

वे इन पंक्तियोंके लेखककी जन्मभूमि मारीशसमें तीन वर्ष रहे और इस प्रवास कालमें स्मारक स्वरूप उन्होंने एक नन्हा सा उपन्यास लिखा जिसका नाम 'पॉल और विर्जिनी' है इसके छपते ही संसारके मुख्य देशोंमें इसका भाषान्तर किया गया। पिछले दिनोंमें इस ग्रन्थका सार 'संस्कृत भवितव्यम्' में छपा था।

इसमें भी लेखकने भारतकी प्रशंसा की है। लिखते हैं कि बंगालके नीले वस्त्रको पॉल और विर्जिनी तथा उनकी माताएं धारण करती थीं। बालकद्वयने कभी हिंसा न की थी; उनके परिवारका कोई सदस्य ऐसा न था जो शाकाहारी न था। भारतके ऋषियोंकी प्रशंसामें लिखते हैं कि वे एकान्तवास करनेवाले थे, महापण्डित थे इत्यादि।

लिओ टॉलस्टॉय पर इनका अचूक असर क्यों न होता? अगर वेद इनके जमानेमें अनूदित हो गया होता तो ये भी इस महद्ग्रन्थ का अध्ययन करते। वे न वेद और न ही उपनिषदोंके वचनोंका संग्रह कर पाये क्योंकि वेद तो उपलब्ध था ही नहीं और उपनिषदोंका जब फ्रेंचमें भाषान्तर हुआ वे बहुत वृद्ध हो गये थे और उस अनुवादको पढ न सके।

France in search of truth. They went to different parts of Asia. One of them found his way to India. He began to search. He went to the so-called cities of those time— naturally this was before the British occupation, before even the Mogul period. He saw the socalled high caste people, men and women, till he felt at a loss. Finally, he went to a humble cottage in a humble village. That cottage was a bhangi cottage and there he found the truth that he was in search of."

If you really went to see India at its best, you have to find it in the humble bhangi homes of such villages. There are seven lakhs of such villages......"

—D. G. Tendulkar, MAHATMA, vol 7

शिक्षा - विचार

(लेखक— श्री बलदेव प्राध्यापक, गुरुकुल झज्जर)

यह सौभाग्यकी बात है कि आज हमारे देशमें शिक्षणालयों एवं शिक्षार्थियोंकी संख्या सन् १९४७ से पूर्वकी अपेक्षा अत्यधिक है। आजसे ४० वर्ष पूर्व बडे-बडे नगरोंमें ही हाईस्कूल पाये जाते थे परन्तु आज प्रत्येक बडा गाँव हाई-स्कूल होनेका गौरव रखता है जिसमें हजारोंकी संख्यामें विद्यार्थिगण विद्या प्राप्त करते हैं।

विद्याकी परिभाषा करते हुए एक भारतीय विद्वान्ने लिखा है:—

'सा विद्याया विमुक्तये' अर्थात् विद्या वह है जो मुक्ति दिलाये, मुक्तिका अर्थ है 'विमुञ्चन्ति पृथग्भवन्ति जना यस्मिन् सा मुक्ति' दुःखसे अत्यन्त छूट जानेका नाम मुक्ति है।

विद्याकी इस परिभाषाके आधार पर विद्या वृद्धिके साथ-साथ सुख वृद्धि भी होनी चाहिये, परन्तु जब हम इस विषय पर विचार करते हैं तो यही कहना पडता है—

मर्ज बढता ही गया ज्यों ज्यों दवाकी।
आगमें शौले उठे ज्यों ज्यों हवाकी॥

प्राचीन कालका अध्ययन करते हुए जब वर्तमान पर दृष्टि पडती है तो आकाश और पातालका अन्तर प्रतीत होता है, जैसे—

(१) कहाँ नये जमानेके मतवाले, कहाँ पुराने जमानेकी सौम्य एवं दिव्य आकृतियाँ ?

(२) कहाँ महाबली भीम जो युद्धमें मदमस्त हाथियोंको भी पछाड देता था। कहाँ अपनी शक्तिको इन शब्दोंमें प्रदर्शित करनेवाला आजका नवयुवक—

आज भी इतनी शक्ति है इस सूखी कलाईमें।
यदि आज्ञा हो तो आग दूं दियासलाईमें॥

(३) कहाँ धनुर्धारी वीर अर्जुन जिसका नाम मात्र सुनते ही अरिदलमें भगदड मच जाती थी। और कहाँ भूत प्रेतसे भी डर कर रात्रिको घरसे बाहर न निकलनेवाला आज का नामधारी शेरसिंह।

कितना मानसिक पतन है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरणगुप्त 'भारत-भारती' पुस्तकमें भारतकी दुर्दशाका वर्णन करते हुए लिखते हैं—

हम कौन थे क्या हो गये और क्या होंगे अभी।
आओ विचारें आज मिल कर, ये समस्यायें सभी॥

हमारी यह अवस्था क्यों हुई ? हम इतने पतित कैसे हुए ? इस पतित अवस्थाका प्रधान कारण क्या है ? जब हम इन सब कारणों पर दृष्टिपात करते हैं तो यह एक मैकाले नामक अंग्रेजकी काली करतूतोंका परिणाम प्रतीत होता है, जिसने भारतवासियोंको सदैव परतन्त्र बनाए रखनेके लिए स्कूलों और कालेजोंमें पढाई जानेवाली आधुनिक शिक्षा पद्धति का सूत्रपात किया। शिक्षाकी व्याख्या करते हुए एक अंग्रेज विद्वान्ने लिखा है—

" Education is a Knowledge which makes us beautiful in three things--body, mindand Soul "

अर्थात् विद्या वह ज्ञान है जो हमारे शरीरको सुन्दर बनाए, मस्तिष्कको उन्नत करे और आत्माका विकास करे। इस कसौटी के आधार पर आजकल स्कूल एवं कालेजोंका अक्षर ज्ञान अत्यधिक निम्न श्रेणीकी अविद्या ही कहा जा सकता है जो हमारी इन तीनों शक्तियोंके लिए दिन रात प्रयत्नशील है।

पाश्चात्य सभ्यता हमारे विद्यार्थियोंको कालिजमें पहुँचनेसे पूर्व ही सोलह संस्कारोंसे संस्कृत कर देती है। इसके रंगमें रंगा हुआ विद्यार्थी समाचार पत्रोंमें सब रोगोंकी अचूक औषध पढकर अपने नाशके लिए उद्यत हो जाता है। जब पूर्णतया नष्ट हो जाता है तो सिर-पीट पीट कर रोता है और चिल्लाता है।

यह पतित एवं नीच मायावी विदेशी सभ्यता अपने बाह्य आडम्बरोंके कारण इतनी आकर्षक है कि बुद्धिमान् तथा विचारशील विद्यार्थी भी इसके चंगुलमें फँसे बिना नहीं रहता।

रवीन्द्रनाथ टैगोरने अपने एक प्रस्ताव 'सभ्यता और उन्नति' में लिखा है।

"Our youngmen have adopted this western-civilization like gifted horse without its teeth."

अर्थात् हमारे देशके युवकोंने पाश्चात्य सभ्यताको उपहारमें लिए हुए बिना दांतोंके घोडेके समान अपना लिया है, जो अन्तमें केवल भाररूपमें ही सिद्ध होती है। इस दुष्ट सभ्यताके कुप्रभावके कारण आजका मनुष्य कामदेवकी अग्निमें भस्मसात् हो रहा है। जिस अग्निरूपी सभ्यतापर सिनेमा और सहशिक्षा घीका कार्य कर रहे हैं। दूधसे मक्खन निकालनेके पश्चात् जो रुमेटा शेष रह जाता है, दहीमेंसे नवनीत लेने पर जो छाछ शेष रह जाता है, गन्नेमेंसे रस निकालनेके पश्चात् जो निस्सार तत्व रह जाता है तथा तिलोंमेंसे तेल प्राप्त करनेके उपरान्त जो वस्तु फेंकने योग्य है, ठीक वही अवस्था आजके शिक्षित वर्गकी है परन्तु इतना होने पर भी पैंट और कोटमें अपनी सब बुराइयोंको छिपा कर अकड कर चलते हुए दूसरे भले पुरुषोंको असभ्यतक कहनेका दुःसाहस करनेमें लज्जा अनुभव नहीं करते।

इन पढे लिखोंको देखकर बडी दया आती है। एक विद्वान्‌ने इनकी अवस्था इन शब्दोंमें स्पष्ट वर्णनकी है— 'They are like a gaudy purse nothing inside' आज युवावस्थाको प्राप्त विद्यार्थी चमकीले बटुएके समान हैं जो अन्दरसे खाली है। आजका प्रत्येक विचारक, विद्वान् एवं नेता गला फाड फाडकर चिल्ला रहा है। 'This system of education is bad and should be totally changed' यह स्कूलों और कालिजोंमें प्रचलित शिक्षा-पद्धति अधिक मंहगी शब्दाडम्बरयुक्त और सर्वथा निकम्मी है, इसे सर्वथा बदल देना चाहिए।

संसारमें घडी, साइकिल एवं वायुयान बनानेके कारखाने हैं। यदि विश्वमें कोई मनुष्य बनानेका कारखाना हो सकता है तो वह 'आर्ष-पाठ-विधी' के गुरुकुल ही है। स्कूल-कालिज किस वस्तुके निर्माण हेतु खुले हैं इस विषयमें एक विद्वान् लिखता है— Our schools and colleges are only factories for producation B. A. and M. A.s स्कूल और कालिज केवल B. A. और M. A. पास करवानेके कारखाने हैं। जिनसे निकले हुए विद्यार्थी केवल, देशकी बेकारीकी समस्याको बढानेका ही काम करते हैं। वह जहाँ कहीं जाते हैं वहीं पर No vacancy रूपी राक्षसोंके दर्शनसे भयभीत हुए रिवाल्वर एवं विषका आश्रय लेते हैं।

परन्तु इधर गुरुकुलमें आर्ष पाठ-विधि एक निश्चित पाठ्य क्रम पर आधारित है, जो पहले धर्म पश्चात् धनके आधार पर विद्यार्थियोंमें ईश्वरभक्ति, देशप्रेम एवं जीवनके कल्याणकी उच्च भावनाओंको भरनेका श्रेय रखती है। यदि हमारा देश इस सुपरिक्षित ऋषि निर्मित पाठ-विधिको अपना ले तो देशमें युवावस्थाका नाश करनेके केन्द्र सिनेमाघरोंको केवल कौओं और कबूतरोंके अतिरिक्त कोई दर्शक नहीं मिले। विद्यार्थियों परसे व्यर्थकी अनार्ष पुस्तकोंका भार हट जाए। महर्षि दयानन्दके अनुसार अनार्ष पुस्तकोंका पढना ऐसा है जैसे पहाडका खोदना और कौडीका प्राप्त करना। यदि आर्ष पुस्तकोंको इनके स्थान पर पढाया जाय तो देशमें शीघ्र विद्वान् बनें। क्योंकि ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंका पढना समुद्रमें गोता लगाना तथा बहुमूल्य रत्न पानेके समान है।

आज सुधारक लोग सुधारके बहानेसे कुक्कुट पालन योजना, मछली पालन योजना, इस प्रकारकी अनेक कलंकित योजनाओंमें फँसे हुए हैं। १९४७ से पूर्व हमारे देशवासियोंकी पुकार थी—

'इलाही वह दिन होगा जब अपना राज्य देखेंगे।
जब अपनी ही जमीन होगी, और अपना आस्माँ होगा॥

आज भारतका बच्चा बच्चा पुकार रहा है। हे जगदीश्वर! वह दिन शीघ्र ला, जिस दिन देशके कर्णधार सब ओरसे निवृत्त होकर, सब भ्रमोंको निकाल कर अपने प्रिय विद्यार्थियोंके कल्याणके लिए आर्ष-पाठ-विधिको अपनाए। जिसमें सब सुधारोंको केवल मात्र ब्रह्मचर्यका पूर्णतया समावेश है। इस पाठ-विधिके अनुसार चलने पर ही देशकी बागडोर संभालने वाले चिरकालसे इच्छित अपने विचारानुसार अपने विद्यार्थियोंके फूलके समान खिले चेहरे देखनेमें सफल हो सकते हैं।